भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक– साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ३४

सोमवार २६ मई, '६९

अन्य पृष्ठों पर

कश्मीर का चुनाव... ४१८
नौकर की मजाल !
अशुभ लक्षण —सम्पादकीय ४१९
कार्यकर्ताओं के लिए नित्य
अध्ययन आवश्यक —विनोबा ४२०
करुणा ही क्रान्ति की सर्वोत्तम शक्ति
—जयप्रकाश नारायण ४२१
एक विनती —जानकी देवीप्रसाद ४२६
क्रान्तिकारी दार्शनिक
इवान स्विताक —सतीश कुमार ४२७
३१ मई तक बिहारदान की योजना ४२९

अन्य स्तम्भ

अखबार की कतरनें : आन्दोलन के समाचार

सब लोगों को, और खासकर आध्यात्मिक साधना करनेवालों को तो सत्य को कभी छिपाना ही नहीं चाहिए। मेरी दृष्टि से तो सब सद्गुणों में सबसे श्रेष्ठ सद्गुण सत्य है। —विनोबा

सम्पादक
राजमूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी–१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

अहिंसा में कायरता नहीं

मेरी अहिंसा-धर्म एक सक्रिय बल है। इसमें कायरता की या दुर्बलता की भी गुंजाइश नहीं है। किसी हिंसक मनुष्य के किसी दिन अहिंसक बनने की आशा हो सकती है, मगर बुजदिल के लिए ऐसी कोई आशा नहीं होती। इसलिए मैंने इस पत्र में अनेक बार कहा कि यदि हमें कष्ट-सहन की शक्ति से अर्थात् अहिंसा से अपनी स्त्रियों की और अपने पूजा-स्थानों की रक्षा करना नहीं आता, तो हममें—अगर हम मर्द हैं—कम-से-कम इन सबकी लड़कर रक्षा करने की शक्ति तो होनी चाहिए।[1]

बचाव के दो रास्ते हैं। सबसे अच्छा और सबसे कारगर तो यह है कि बिलकुल बचाव न किया जाय, बल्कि अपनी जगह पर कायम रहकर हर तरह के खतरे का सामना किया जाय। दूसरा उत्तम और उतना ही सम्मानपूर्ण तरीका यह है कि आत्म-रक्षा के लिए बहादुरी से शत्रु पर प्रहार किया जाय और अपने जीवन को बड़े-से-बड़े खतरे में डाला जाय।[2]

अहिंसा और कायरता का कोई मेल नहीं। मैं पूरी तरह शस्त्रसज्जित मनुष्य के हृदय से कायर होने की कल्पना कर सकता हूँ। हथियार रखना कायरता नहीं तो कुछ डर का होना तो जाहिर करता ही है। परन्तु सच्ची अहिंसा शुद्ध निर्भयता के बिना असम्भव है।[3]

मैं यह जरूर मानता हूँ कि जहाँ केवल कायरता और अहिंसा के बीच ही चुनाव करना हो वहाँ मैं हिंसा की सलाह दूँगा। मैं चाहूँगा कि भारत अपनी इज्जत की रक्षा करने के लिए भले ही शस्त्रों का आश्रय ले, मगर कायर बनकर बेइज्जति का निःसहाय साक्षी न बने या न रहे।[4]

परन्तु मेरा विश्वास है कि अहिंसा हिंसा से कहीं श्रेष्ठ है, क्षमा में सजा से अधिक बहादुरी है। क्षमा वीर का भूषण है। परन्तु दण्ड देने की शक्ति होने पर भी दण्ड न देना सच्ची क्षमा है। जब कोई निःसहाय प्राणी क्षमा करने का दंभ करता है, तब वह निरर्थक है। परन्तु मैं भारत को निःसहाय नहीं मानता। बल शारीरिक क्षमता से नहीं आता। वह अजेय संकल्प-शक्ति से आता है।

सत्याग्रही का अन्यायी को परेशान करने का इरादा कभी नहीं होता। वह उसे डराना भी नहीं चाहता, हमेशा उसके हृदय से अपील करता है। यही होना भी चाहिए। सत्याग्रही का उद्देश्य अन्याय करनेवाले को दबाना नहीं, बल्कि उसका हृदय-परिवर्तन करना होता है। उसे अपने तमाम कामों में क्षत्रिमता से बचना चाहिए। वह स्वाभाविक रूप में और भीतरी विश्वास से कर्म करता है।[5]

मो. क. गांधी

(१) 'यंग इंडिया' : १६–६–२७; (२) 'यंग इंडिया' : १८–१२–२४ (३) 'हरिजन' : १५–७–३९; (४) 'यंग इंडिया' : ११–८–२० (५) 'हरिजन' : २५-३-३९।

www.vinoba.in

कश्मीर का चुनाव और मुख्य चुनाव-कमिश्नर

हम लोगों ने कश्मीर प्लेबिसिट फ्रंट की इस घोषणा का कि वह जम्मू और कश्मीर राज्य के मध्यावधि चुनाव तथा भविष्य में होनेवाले किसी भी चुनाव में भाग लेगा, बहुत स्वागत किया था। हमने माना था कि उस राज्य के राजनैतिक जीवन को सामान्य बनाने की दिशा में यह एक बड़ा कदम है, इससे वहाँ लोकतांत्रिक प्रक्रिया शुरू होगी जिसके कारण भारतीय संविधान के अन्तर्गत वहाँ की जनता को स्वतंत्रतापूर्वक विचार प्रकट करने का मौका मिलेगा।

इसलिए जब हमने सुना कि मुख्य चुनाव-कमिश्नर ने फ्रंट की चुनाव की तिथियाँ आगे बढ़ाने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया तो हमें बहुत सदमा पहुँचा। प्रार्थना इसलिए की गयी थी कि फ्रंट को चुनाव में भाग लेने का मौका मिल जाय। अगर चुनाव-कमिश्नर प्रशासन की कठिनाइयों का हवाला देकर तिथियों को बढ़ाने में अपनी असमर्थता प्रकट करते तब भी हमें दुख तो होता, लेकिन हम चुप रहते। इस वक्त सबसे ज्यादा दुख चुनाव-कमिश्नर के इस वक्तव्य से है कि उन्होंने प्रशासकीय कारणों से इनकार नहीं किया है, बल्कि इनकार किया है राजनैतिक कारणों से। वह चाहते थे कि फ्रंट पहले यह घोषणा करे कि उसका संविधान के प्रति रुख क्या है। यह जान लेने पर ही वह चुनाव स्थगित करने पर राजी होते। हमारा मत है कि चुनाव-कमिश्नर का यह निर्णय संविधान के विरुद्ध तो है ही, तथ्य और सिद्धान्त की दृष्टि से भी गलत है। चुनाव-कमिश्नर का यह संविधानिक कर्तव्य नहीं है कि वह चुनाव में शरीक होने की इच्छा रखने-वाले दलों के मत की छानबीन करें। अंग्रेजी जमाने में भी किसी राजनैतिक दल को कभी चुनाव से उसके राजनैतिक मत के कारण अलग नहीं किया गया, बशर्ते वह कानून और नियम मानने को तैयार हो। अंग्रेजी जमाने में कांग्रेस ने इस घोषित उद्देश्य से चुनाव लड़ा था कि वह संविधान का सुधार करेगी या उसका अन्त करेगी, और उसकी इस घोषणा पर कभी किसी ने आपत्ति नहीं की। चुनाव-कमिश्नर का निर्णय तथ्य और सिद्धान्त में गलत इसलिए है, क्योंकि नामजदगी का पर्चा दाखिल करते समय हर उम्मीदवार को संविधान के प्रति वफादारी के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करना ही पड़ता है।

हम महसूस करते हैं कि चुनाव-कमिश्नर के इस संविधान-विरोधी निर्णय को यों ही नहीं छोड़ देना चाहिए। गृह-मंत्रालय और कानून-मंत्रालय का संविधान के प्रति कर्तव्य है कि चुनाव-कमिश्नर के वक्तव्य की जाँच करें और उचित कार्रवाई करें। लेकिन हमें दुःख है कि ऐसा करने के बजाय सरकार इस विषय पर प्रश्न का उत्तर देने तक को राजी नहीं हुई। अगर आज चुनाव-कमिश्नर कश्मीर के प्लेबिसिट फ्रंट को चुनाव लड़ने से रोक सकते हैं तो कल किसी भी राजनैतिक दल के साथ यही बर्ताव हो सकता है। उन्हें चुनाव लड़नेवाले दलों के बर्ताव से कोई मतलब नहीं है, उनका काम मात्र यह देखना है कि चुनाव स्वतंत्र और निष्पक्ष हों।

हस्ताक्षर

—जे० बी० कृपालानी, हुमायूँ कबीर, अब्दुल गनी दर, पी० राममूर्ति, ए० के० गोपालन्, सुशीला गोपालन्, निर्लेप कौर, एम० मोहम्मद इस्माइल, सय्यद बद्रुद्दुजा, ए० पी० चटर्जी, आर० उमानाथ, एस० कुण्डू, किंकर सिंह, अर्जुनसिंह भदोरिया, घयूर अली खाँ, रामअवतार शास्त्री, इशाक सम्भाली, लताफत अली खाँ, एम० इस्माइल, इब्राहिम सुलेमान सेठ, भगवान दास, सत्य-नारायण सिंह, इन्द्रजीत गुप्ता, महाराज सिंह भारती, गणेश घोष, ज्योतिर्मयी बसु, एस० एम० बनर्जी, पी० के० वासुदेवन् नायर, एम० वी० भद्रम्, जोगेश्वर यादव, चित्त बसु, एस० ए० खाजा मोइद्दीन, भोगेन्द्र झा, जे० एम० इमाम, बी० विश्वनाथ मेनन, के० सुब्रवेलु, घोरेश्वर कलिता, जे० एम० विश्वास, त्रिदीव कुमार चौधरी, जी० गोपीनाथ नायर, रामजी राम, पत्यम गोपालन् के०, चन्द्रशेखरन्, चन्द्रशेखर सिंह, बी० वी० अब्दुल्ला कोया, राम चरण, जुलफिकार अली खाँ, जी० पी० मन्गलाथुन्दम्, शशी राजन् पी० विश्वम्भरम्, शिवपूजन शास्त्री (सभी संसद-सदस्य)

नयी दिल्ली, १६ मई, १९६९

विद्यार्थी और समाज-परिवर्तन

'बड़ी अच्छी बात है कि विद्यार्थी प्रगति और परिवर्तन के लिए आगे बढ़ रहे हैं, लेकिन कसौटी तो तब होगी जब वे विश्व-विद्यालय छोड़ चुकेंगे। उस वक्त क्या वे उसी ढाँचे के सेवक बनेंगे? अपने हाथ-पैर, अपना दिल-दिमाग उसी व्यवस्था से बँधने देंगे? और, जब वे इस लायक होंगे कि दूसरों का दमन कर सकें तो भी क्या आज की ही तरह मुक्ति का पक्ष लेते रहेंगे?

—'पीस न्यूज', ८ अप्रैल '६९

सेना और निष्पक्षता

दस साल पहले अयूब ने सेना की शक्ति से पाकिस्तान पर कब्जा किया। उसने बार-बार व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से इनकार किया, और वादा किया कि ज्यों ही देश तैयार हो जायगा वह संसदीय लोकतंत्र की पद्धति कायम होने देगा। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। दस साल बाद उसने दूसरे सैनिक, जेनरल याहिया खाँ को अपनी जगह बिठा दिया। याहिया खाँ अब वही वादा कर रहा है जो अयूब ने दस साल पहले किया था।

क्या याहिया विभिन्न निहित स्वार्थों का मेल मिलाकर देश में शान्ति और व्यवस्था कायम कर सकेगा? उसे भी हटाने के लिए दूसरी क्रान्ति ही करनी पड़ेगी, जो शायद पूर्वी पाकिस्तान में ही संभव होगी। लेकिन इस तरह की क्रान्ति से उस पूरे क्षेत्र में शक्ति का सन्तुलन बदल जायगा। और, तब पश्चिम के बड़े राष्ट्र अपने 'सीटो' (साउथ ईस्ट एशिया ट्रीटी आरगनाइजेशन) द्वारा सामने आयेंगे और यथास्थिति (स्टेटस्को) कायम रखने के लिए याहिया को बनाये रखने की कोशिश करेंगे।—बाब ओवरी, 'पीस न्यूज'

www.vinoba.in

नौकर की यह मजाल !

अभी हाल में राज्यसभा में एक मजेदार घटना हुई। घटना में क्या सच और क्या झूठ था, यह दूसरी बात है, लेकिन उसे लेकर कानून के डिप्टी मिनिस्टर और उस विभाग के सचिव में जो अप्रिय प्रसंग पैदा हो गया उसका अपना अलग महत्व है। महत्व इस बात में है कि यह प्रश्न सदस्यों के लिए प्रतिष्ठा का बन गया, और इस बात पर बन गया कि एक नौकर की यह मजाल कि जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों की शान के खिलाफ कुछ कह सके ! विभाग का सचिव नौकर है, और डिप्टी मिनिस्टर, छोटा ही सही, लेकिन है नेता !

नेताशाही बनाम नौकरशाही का सवाल ऐसा है जिसमें सभी नागरिकों को रूचि होगी। संसद में यह सवाल 'नेता बनाम नौकर' का है, लेकिन जहाँ वोट और टैक्स देनेवाले नागरिक हैं वहाँ यह प्रश्न 'नौकर बनाम मालिक' का हो जाता है। जनता दोनों की मालिक है—नौकर की भी, नेता की भी, और, उसीकी सबसे कम इज्जत है।

एक समय था जब नेता नेता थे, और जनता उनके पीछे चलती थी। उन नेताओं के त्याग और सेवा से मुल्क की शान बढ़ती थी। लेकिन आज कहाँ हैं नेता और उनकी प्रतिष्ठा ! इस शब्द 'नेता' की प्रतिष्ठा किसने छीन ली ? क्यों जनता की निगाह में 'नेता' का दर्जा 'नौकर' से भी नीचे हो गया ! क्यों एक बी० डी० ओ० एम० एल० ए० से ज्यादा इज्जत पाने लगा ? इसकी जिम्मेदारी स्वयं नेताओं पर है। अगर नेताओं ने मुल्क की शान का ख्याल नहीं रखा तो कायदे-कानून और कुर्सी की बदौलत कबतक अपनी शान कायम रख सकेंगे ?

लोक-प्रतिनिधि की प्रतिष्ठा लोकतंत्र की प्रतिष्ठा है। एशिया और अफ्रीका के देशों में जिस तरह लोक-नेताओं ने अपने को गिराया और अपनी दलगत राजनीति से मुल्क को भ्रष्ट और कमजोर किया, उससे लोकतंत्र धीरे-धीरे फासिस्टवाद के पेट में समाता चला गया। आज अगर हर देश में लोकतंत्र के स्थान पर सैनिक-तंत्र है, जो नौकरशाही का ही एक रूप है, तो उसकी जिम्मेदारी नेताओं पर नहीं तो और किस पर है ? उनका बड़प्पन तो तब कायम रहता जब वे अपनी सेवा-भावना, सादगी, निष्पक्षता, ईमानदारी और कार्यक्षमता से देश को आगे बढ़ाते, और जनता को रास्ता दिखाते। लेकिन यह सब नहीं हुआ, नौकरों के सामने उनकी कलई खुल गयी। ३१ से ५१ रुपये रोज भत्ता हो जाय फिर भी कलई न खुले, तो कब खुलेगी ?

जहाँ तक जनता का प्रश्न है उसके लिए साँपनाथ और नागनाथ में क्या अन्तर है ? वह तो देख रही है कि जिस वोट से वह कभी लोकतंत्र की मालिक बनी थी वही आज उसके दमन का साधन बन रहा है, और जो टैक्स देकर उसने कभी संरक्षण का आश्वासन प्राप्त किया था वही उसके शोषण का माध्यम बन रहा है। उसके सामने नेताशाही और नौकरशाही, दोनों से ही मुक्त होने का सवाल है। उसका एक ही उपाय है; वह यह कि अपने अधिक-से-अधिक जीवन को नेताशाही और नौकरशाही के हाथों से निकाल ले। ग्रामस्वराज्य उसीका आन्दोलन है।

अशुभ-लक्षण

"एक बात बताइएगा ? मुझे कहने में बड़ा संकोच हो रहा है, लेकिन···।" "संकोच क्या है ? आप निस्संकोच कहें, क्या बात है ?" बोले : "ग्रामदान में मैं लगा तो हूँ और लगा भी रहूँगा, लेकिन यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि इससे क्या होगा, कैसे होगा। कुछ अजीब उलझन-सी बनी रहती है मन में।"

यह बात एक ऐसे आदमी की है जिसने स्वराज्य के जमाने से लेकर आज तक देश और समाज का ही काम किया है; जो आज भी ग्रामदान के लिए निरंतर घूमता रहता है। मैं उसकी बात सुनकर अचम्भे में पड़ गया। जल्दी सोच नहीं सका कि क्या उत्तर दूँ। बार-बार यही प्रश्न उठता था कि जिस चीज को आदमी समझ नहीं सकता उसमें वह इतनी लगन के साथ लगा कैसे रह सकता है ? क्या न समझने से श्रद्धा मजबूत होती है ?

अगर यह स्थिति किसी एक आदमी की होती तो कोई बात नहीं थी ! अगर कार्यकर्ताओं के दिल को टटोला जाय तो ऐसे लोगों की संख्या ज्यादा नहीं मिलेगी जिनके सामने आन्दोलन के अगले कदम की स्पष्ट कल्पना हो, या जो एक कार्यक्रम का दूसरे कार्यक्रम के साथ सही मेल मिला सकते हों।

हमें मानना चाहिए कि अगर साथियों के मन में विचार की उलझन या अस्पष्टता हो और वह बराबर बनी रहे तो यह हमारे आन्दोलन की एक बहुत बड़ी कमी है जिसे दूर करने की हर सम्भव कोशिश जल्द होनी चाहिए। अब आन्दोलन, कम-से-कम एक राज्य में, ग्रामदान के बाद ग्रामस्वराज्य की मंजिल पर पहुँच रहा है; कम कठिनाई की ओर से ज्यादा कठिनाई की ओर जा रहा है। ऐसी हालत में उलझन या अस्पष्टता हमारे लिए एक ऐसी समस्या बन जायेगी जो हमें आगे बढ़ने में असमर्थ कर देगी।

ग्राम-स्वराज्य की दृष्टि से दो तैयारियाँ नितान्त आवश्यक मालूम होती हैं। एक, मुख्य साथियों का शिक्षण। शिक्षण दोनों चीजों का—आन्दोलन के दर्शन का और उसकी बदलती हुई कार्य-पद्धति का। दूसरी, सामूहिक निर्णय का अभ्यास। नीचे से लेकर ऊपर तक हर स्तर पर स्वतंत्र अभिक्रम और निर्णय प्रकट होना चाहिए। आज ऐसा नहीं है। अभ्यास है बने-बनाये निर्णय दूसरों को सुनाने का, और खुद निर्णय मान लेने का। इसका नतीजा यह हुआ कि हमारा हाथ-पैर तो काम में लगता है, लेकिन दिमाग अलग रहता है, क्योंकि हम मान लेते हैं कि हमारा काम सोचने का नहीं है, सिर्फ करने का है। कई बार हमारी उच्चस्तरीय बैठकों में भी सर्वसम्मति के नाम में चिन्तन और निर्णय की जिम्मेदारी से भागने की छिपी प्रवृत्ति साफ दिखाई देती है।

ग्रामस्वराज्य के लिए कार्यकर्ताओं की एक सुसंगठित श्रेणी कैसे बनेगी, और नीचे से ऊपर तक सामूहिक निर्णय के आधार पर आन्दोलन कैसे चलेगा, ये ऐसे प्रश्न हैं जिन पर आन्दोलन के साथियों और मार्ग-दर्शकों, दोनों का ध्यान शीघ्र जाना चाहिए।•

कार्यकर्ताओं के लिए नित्य एक घंटे का अध्ययन अत्यावश्यक

आज भिन्न-भिन्न लोग मरते हैं तो उनके नाम का स्मारक बन जाता है, जैसे—अनुग्रह-नारायण स्मारक, श्री बाबू स्मारक, लक्ष्मी-नारायण स्मारक, नेहरू स्मारक, राजेन्द्र स्मारक, लालबहादुर स्मारक, गांधी-स्मारक वगैरह-वगैरह। भिन्न-भिन्न स्मारक खड़े होते हैं और उनकी भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियां चलती हैं, जिनका एक-दूसरे से मेल नहीं। अगर ये सब संस्थाएँ मिलकर इकट्ठा काम करतीं तो कितना बड़ा काम होता!

गांधीजी कहते थे कि समग्र दृष्टि से सब काम होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने तीन बातें बतायीं :

(१) समग्र दृष्टि से काम होना चाहिए।

(२) शाखा नहीं, बल्कि मूल पकड़ना चाहिए। संस्कृत में कहा है—शाखाग्राही और मूलग्राही। लोग शाखा काटते हैं, तो फिर बारिश होने पर उसमें नयी-नयी टहनियां बहुत-सी निकल आती हैं। अगर मूल पर प्रहार करते हैं, तब वृक्ष गिरता है।

(३) गांधीजी ने जो विचार दिया है वह वृक्ष के समान है। उसकी अनेक शाखाएँ हैं, जैसे—सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि, सब पर कहा है। परंतु आध्यात्मिकता उसका आधार है।

हमने पूसा रोड को संस्था लक्ष्मीनारायणपुरी को 'ठोक-पीट आश्रम' कहा है। वहां रात-दिन खादी की ठोक-पीट होती रहती है। वहां सरकार से, खादी कमीशन आदि से रुपये आते हैं और काम चलता है। बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ मुजफ्फरपुर में तो एक मामला-मुकद्दमा विभाग भी है। हमारी रचनात्मक संस्थाओं की ऐसी हालत है। कोई समग्र दृष्टि से काम नहीं होता, बल्कि अलग-अलग प्रवृत्तियों को लेकर वे चलती हैं। उन संस्थाओं में ये तीन बातें होनी चाहिए :

(१) विचारों का अध्ययन हो।

(२) अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन हो।

(३) भक्ति का वातावरण हो।

ये तीन चीजें जहां नहीं, वहां गांधी-विचार कैसे फैलेगा? सोचा जाय तो सारे भारत में गांधी की आश्रम जैसी संस्थाओं में दो-चार हजार लोग होंगे। गांधी-निधि आदि के पैसे से वे संस्थाएँ चलती हैं। अगर ये सब निधियां समाप्त हो जायँ तो ये संस्थाएँ बंद हो जायेंगी। इन संस्थाओं को स्थानीय आधार पर खड़ा होना चाहिए।

काहिरा में मस्जिद है। उसे बने हजार साल हो गये। हजरत मुहम्मद को मरे तेरह सौ साल हो गये। उस मस्जिद में कुरान का—कुरान में तीस भाग हैं, जिसे 'पारा' कहते हैं, उन तीस पारों का—बारी-बारी से अखण्ड रूप से रात-दिन पाठ होता है, जो आज तक कभी रुका नहीं। क्या यह सामान्य निष्ठा है?

क्रिश्चियनों का उदाहरण लीजिए। बाइबिल का सतत अध्ययन चलता है। बाइबिल का एक हजार भाषाओं में अनुवाद किया है। जहाँ जिन भाषाओं में कोई पुस्तक नहीं,

---

विनोबा

उस भाषा में भी बाइबिल छपे हैं और चार सौ भाषाओं में छापने की योजना है।

शंकराचार्य को मरे करीब ग्यारह सौ साल हो गये। उनके मठ में ग्यारह सौ साल से शांकरभाष्य, ब्रह्मसूत्र आदि का अध्ययन-अध्यापन चल रहा है। मैं वह स्वयं देखकर आया हूँ। परंतु गांधाजा की किताबों को गांधी के लोग भी बराबर नहीं पढ़ते हैं। हम पूछते हैं तो लोग कहते हैं कि किताबें क्या पढ़ें, उसमें कताई, हरिजन-सेवा वगैरह की ही बातें न लिखी होंगी, सो तो हम करते ही हैं। तो मैं कहता हूँ कि अगर आपको पढ़ने की नहीं पड़ी, तो वे हर सप्ताह लिखते क्यों थे? समय पर छपने के लिए कभी-कभी तो हवाई जहाज से भेजते थे। वे अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकालकर लिखते थे तो हमें उसको पढ़ने में आलस क्यों करना चाहिए?

पहले गांधीजी की प्रश्नोत्तरी निकलती थी। उसमें पहले मैं प्रश्नों को पढ़ जाता था और मैं अपने मन से उसका जवाब सोचता था। फिर गांधीजी का उत्तर पढ़ता था और देखता कि हमारे उत्तर में और गांधीजी के उत्तर में कहाँ फर्क है, कितना साम्य है। इस तरह से तुलनात्मक अध्ययन चलना चाहिए। गांधीजी की पुस्तकों को मार्क्स के विचारों से और प्राचीन वेद-पुराण और सन्तों की वाणी से तुलना करके पढ़ना होगा। हमें बड़ी चिन्ता होती है कार्यकर्ताओं की यह अध्ययनशून्यता देखकर। बाबा का अध्ययन सतत चलता रहा है। पदयात्रा में भी अध्ययन रुका नहीं, चलता रहा। बाबा की उम्र अब ७४ साल की है, तो बाबा अभी भी अध्ययन करता है। अभी मेरी एक पुस्तक प्रकाशित होगी (प्रकाशित हो गयी), जिसमें वेद का चयन किया है।

इसलिए कहता हूँ कि शाम को खा-पीकर सोने से पहले एक घण्टा अवश्य अध्ययन करें। अगर शाम को नींद आती है तो भोर में उठकर शौच आदि से निवृत्त होकर मुँह-हाथ धोकर एक घण्टा अवश्य अध्ययन करें, उस समय का अध्ययन अच्छा होता है। कार्यकर्ताओं को एक घंटा नित्य अध्ययन करने की बड़ी जरूरत है।

आप लोग जानते हैं कि बाबा कल यहाँ से निकलेगा और २३ घंटा रामगढ़ में बिताकर राँची पहुँचेगा।

कल दो नेताओं ने कहा कि भारत का संकट बिना ग्रामदान के टलेगा नहीं। श्री के० बी० सहाय ने तो स्पष्ट कहा कि भारत की सीमाओं पर हिंसात्मक कम्युनिज्म आ गया है, अब बिना ग्रामदान-आन्दोलन के उससे बचने का उपाय नहीं है। के० बी० सहाय का यह एकदम स्पष्ट चिन्तन है। दूसरा नेता है बसन्तनारायण सिंह, उसने भी यही बताया।

इसलिए सभी मिलकर शक्ति लगाओ कि ३० मई तक जिलादान पूरा करके राँची में समर्पण करने पहुँचो तो उससे राँचीवालों को भी धक्का लगेगा और उन्हें जिलादान करने में बल मिलेगा। राँची का फैसला राँची में होगा। ३० तारीख को तय होना चाहिए—राँची में हजारीबाग जिला-समर्पण। एडवोकेट इसकी एडवोकेसी करें, व्यापारी अपनी शक्ति इसमें लगायें। इसमें देना थोड़ा है, परन्तु पाना अधिक है।

—हजारीबाग जिले के रचनात्मक कार्यकर्ताओं के बीच किया गया प्रवचन, ८-५-६९ : हजारीबाग

www.vinoba.in

• करुणा हो क्रान्ति की सर्वोत्तम शक्ति
• कत्ल-क्रान्ति की परिणति सुधारवादी
• कानून : न क्रान्ति की शक्ति, न विकल्प

पिछले दिनों में कोई लगभग डेढ़ वर्ष से मेरे मन में एक सैद्धान्तिक निश्चय-सा होता जा रहा है, जिसका हमने जब-तब अपने साथियों से जिक्र भी किया है। हम अपने प्रचार में अक्सर ऐसा कहते हैं कि सामाजिक क्रान्ति के लिए—'काम्प्राहेन्सिव सोशल रेवोल्यूशन' (व्यापक सामाजिक क्रान्ति) के अर्थ में प्रयोग कर रहा हूँ—तीन ही रास्ते हैं : कानून, कत्ल, और करुणा के। मुझे अपने देश में कानून का जो कुछ अबतक का अनुभव हुआ, कांग्रेसी और गैर-कांग्रेसी हुकूमत का, और दुनिया में भी जहाँ-जहाँ समाजवादी आदि प्रगतिशील लोग सत्ता में आये और वहाँ का जो अनुभव हुआ उस पर से मैं इस निर्णय पर पहुँचता जा रहा हूँ (मुझे बड़ी खुशी होगी, अगर मेरा यह निष्कर्ष गलत साबित हो) कि कानून से कोई क्रान्ति होगी समाज में, इसके लिए कोई सम्भावना नहीं दीखती है। कुछ थोड़ा-बहुत सुधार हो सकता है। लेकिन समाज की जो व्यवस्था है उसका आमूल परिवर्तन हो जाय कानून से, ऐसा हमें नहीं लगता है।

आमूल परिवर्तन तो जनता की शक्ति से ही हो सकता है—चाहे वह शक्ति जनता की रक्त-क्रान्ति के रूप में प्रकट हो या अहिंसक क्रान्ति के रूप में। रक्त-क्रान्ति में मुझे कोई नैतिक आपत्ति नहीं है। अहिंसा में विश्वास रखते हुए भी मुझसे ये बातें सुनकर आपको कुछ अचम्भा होगा। लेकिन मुझे उसमें आपत्ति नैतिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक है जो यह है कि रक्त-क्रान्ति अहिंसक क्रान्ति से ज्यादा जल्द होती है, या ऐसी संभावना है, दुनिया के इतिहास से ऐसा लगता नहीं है। दूसरी जो बुनियादी बात है, वह यह हमें देखने को मिली कि रक्त-क्रान्ति से जो नया समाज बनता है, वह उस समाज से बहुत भिन्न बनता है जिसकी कल्पना क्रान्तिकारियों ने पहले की होती है। जिन उद्देश्यों को लेकर वह रक्त-क्रान्ति के पीछे पड़ते हैं, वह कुछ-का-कुछ बन जाता है, यह एक ही क्रान्ति का नहीं, बल्कि सभी क्रान्तियों का लगभग यही हस्र हुआ। कुछ आमूल परिवर्तन होता अवश्य है, लेकिन फिर भी समाज की रचना, क्रान्ति से पहले जैसा क्रान्तिकारी करना चाहते थे, वैसी नहीं हो पाती।

भारत की राष्ट्रवादी आंशिक अहिंसक क्रान्ति

अपने देश में भी एक प्रकार से आंशिक रूप से, पूर्ण रूप से नहीं कह सकते हैं, एक अहिंसक क्रान्ति या शांतिमय क्रान्ति हुई जो राष्ट्रवादी क्रान्ति (नेशनल रेवोल्यूशन) थी। कोई सामाजिक क्रान्ति (सोशल रेवोल्यूशन) तो नहीं थी। राजनीतिक स्वतंत्रता भारत को प्राप्त हुई। और उसका अधिकांश

जयप्रकाश नारायण

श्रेय गांधीजी के नेतृत्व को और उनके द्वारा चलाये गये आन्दोलन को था। एकमात्र उसीका श्रेय था ऐसा तो नहीं कह सकते। उसके बाद यहाँ तो यह देखने को मिला कि कम-से-कम गांधीजी के मन में स्वराज्य के बाद की जो कल्पना थी, और उनके विचारों को अच्छी तरह से जिन्होंने समझा है, उन लोगों के सामने भी जो कल्पना थी, उससे भिन्न वहाँ निर्माण हो गया। लेकिन फिर भी एक बात अवश्य रह गयी, जिसका श्रेय मैं समझता हूँ गांधीजी को है, उनके उस शांतिमय आन्दोलन को है कि कम-से-कम इस देश में औपचारिक लोकतंत्र (फार्मल डेमोक्रेसी) तो कायम है। लोकतंत्र इस देश में है। नागरिक अधिकार लोगों को प्राप्त हैं बहुत अंश तक। अपने-अपने विचार हर कोई प्रकट कर सकता है। नक्सालवादी भी अपना विचार प्रकट कर सकते हैं, अपने संगठन बना सकते हैं, आन्दोलन चला सकते हैं। यह सब आजादी है, और जनता को यह अवसर है कि वह अपनी पसन्द की हुकूमत बनाये।

जयप्रकाश नारायण :
निरन्तर क्रान्ति की आकांक्षा

जनता की हुकूमत तो नहीं होती है, लेकिन उसके पसंद की, उसके द्वारा निर्वाचित लोगों की होती है। मैं ऐसा मानता हूँ। सारे एशिया-अफ्रीका के ऊपर नजर डालें तो जितने नये राष्ट्र स्वतंत्र हुए साम्राज्यवाद से वहाँ लोकतंत्र इस प्रकार से टिकाऊ (स्टेबुल) नहीं दीखता। पाकिस्तान में लोकतंत्रीय स्थिरता नहीं आयी है, उसका मुख्य कारण यही है कि पश्चिमोत्तर सीमा (नार्थ-वेस्ट फ्रंटियर) के मुस्लिम अवाम को छोड़कर इस देश की मुस्लिम जनता उस प्रकार से गांधीजी के आंदोलन में भाग नहीं ले पायी थी।

जनक्रान्ति (मास-रेवोल्यूशन) हो, लेकिन अगर खूनी क्रान्ति हो, तो उसमें से इस प्रकार का टिकाऊ लोकतंत्र (स्टेबुल डेमोक्रेसी) निकल सकता है, यह नहीं होता है। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति से नेपोलियन बोनापार्ट निकला, रूस में स्टालिन निकला। यह आप हर जगह देखेंगे। जनता उसमें भाग लेती है। जनता के भाग लिये बिना क्रान्ति हो नहीं सकती है। लेकिन अगर वह खूनी क्रान्ति होती है, तो लोकतंत्र उसमें से निकलेगा, ऐसा कम-से-कम मेरे अध्ययन में नहीं आया है। भारत में यह हो पाया, इस कारण से, कि यहाँ की मुस्लिम जनता को छोड़कर बाकी अन्य धर्म के लोगों ने इसमें भाग लिया। तो इतना भर तो कह ही सकते हैं कि अहिंसक क्रान्ति से यह हुआ। लेकिन जिस प्रकार की स्वराज्य की कल्पना गांधीजी की थी वह तो अभी आगे है।

मुझे नहीं लगता है—कोई ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय अनहोनी घटना हो जाय तो दूसरी बात है कि ऐसी कोई परिस्थिति बने और यहाँ रक्त-क्रान्ति हो जाय—कि यहाँ निकट भविष्य में रक्त-क्रान्ति होने जा रही है। हाँ, अगर रक्त-क्रान्ति में विश्वास करनेवालों का काम कुछ अधिक व्यापक बनता है, तो उसका परिणाम निश्चित रूप से वही होगा, जैसा कि पाकिस्तान में हो गया। समाज आगे जाने के बजाय पीछे—फौजी तानाशाही—की तरफ जायेगा।

www.vinoba.in

कानून : न क्रान्ति की शक्ति, न विकल्प

मुझे बड़ी खुशी हो, अगर यह सम्भव हो जाय कि सामाजिक क्रान्ति के लिए कानून भी एक विकल्प है। लेकिन मुझे पूरा संदेह है कि ऐसा कभी सम्भव हो सकेगा। बाकी दो विकल्प रहते हैं। भारत में अगर कभी रक्त-क्रान्ति होगी, तो ज्यादा विलम्ब से होगी और अहिंसक क्रान्ति उससे कहीं शीघ्र होगी—और हो रही है, अपनी आँखों के सामने हो रही है।

मेरा ख्याल है कि नक्सालवादी विचार-वाले जो लोग हैं, जैसे नागी रेड्डी आदि, वे तो यह मानते हैं कि वामपंथी कम्युनिस्ट लोग भी संसदीय लोकतंत्र में फँसे हैं। हो सकता है कि वे सही रास्ते पर हों, वे ठीक सोचते हों। इस माने में कि इस—संसदीय लोकतंत्र—में से कुछ निकलेगा नहीं। आप देखिए, जितने भी ये वामपंथी लोग शासन में हैं, उनको मौका मिला है कुछ भी करने के लिए अपने प्रदेश में। कोई आमूल परि-वर्तन कानून के द्वारा कर सकते हैं, कम से-कम भूमि-सुधार के मामले में। लेकिन वह भी नहीं कर पा रहे हैं, या नहीं करेंगे। उसके लिए एक हवा बनायी है उन्होंने कि केन्द्र हमारे रास्ते में रुकावट है। इसलिए जबतक कि केन्द्रीय शासन हमारे हाथों में नहीं आता है तबतक हम कुछ नहीं कर सकते। अब बैठिए, उसका इंतजार करते रहिए, कि एम०एस० नम्बूदरीपाद के हाथ में या ज्योति बसु के हाथ में केन्द्र की सत्ता आये। तबतक तो क्रान्ति कानून से भी उनके कहने के मुताबिक टल गयी; क्योंकि राज्य में वह कुछ कर नहीं सकते हैं।

रक्त-क्रान्ति का सुधारवादी चेहरा और अहिंसक क्रान्ति की समग्रता

इस प्रकार से एक प्रकार का नैराश्य (फ्रस्ट्रेशन)—सा है। कोई दक्षिणपंथी या वामपंथी साम्यवादी शांति में विश्वास करते हैं, अहिंसा में विश्वास करते हैं, ऐसा मैं नहीं कहता; लेकिन वे रक्त-क्रान्ति के लिए तैयारी कर रहे हैं, ऐसा भी नहीं कहा जाता है। दूसरे लोग कर भी रहे होंगे। लेकिन मुझे नहीं लगता है—कोई ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय अनहोनी घटना हो जाय तो दूसरी बात है, जिससे कि ऐसी कोई परिस्थिति बने और यहाँ क्रान्ति हो जाय—कि यहाँ रक्त-क्रान्ति निकट भविष्य में होने जा रही है। हाँ, अगर रक्त-क्रान्ति में विश्वास करनेवालों का काम कुछ अधिक व्यापक बनता है, तो उसका परिणाम निश्चित रूप से वही होगा, जैसा कि पाकिस्तान में हो गया। समाज आगे जाने के बजाय पीछे फौजी तानाशाही (मिलिटरी डिक्टेटरशिप) की तरफ जायेगा। वह कितने साल तक रहेगा, और फिर उसमें से क्या निकलेगा, वह तो भगवान ही जाने!

इसलिए बिलकुल एक व्यावहारिक (प्रागमैटिक) तरीके से, कोई नैतिक या अध्यात्म आदि की बात नहीं, बिलकुल एक सामाजिक क्रान्तिकारी (सोशल रेवोल्यू-शनरी) की दृष्टि से सोचता हूँ, तो बराबर, हर मिनट इस मान्यता पर और अधिक दृढ़ होता जा रहा हूँ कि क्रान्ति अगर हो सकती है तो अहिंसा के ही रास्ते से।

अब इतने ग्रामदान हुए, फिर भी हमको आत्म-विश्वास नहीं होता कि कोई बहुत बड़ी बात हुई। इस बात का निर्मला बहन ने जिक्र किया। इन्होंने कहा कि नक्सालबाड़ी में कुछ हुआ तो सभी वामपंथी लोगों को लगा कि कोई बहुत बड़ा काम हुआ। उस वक्त वे लोग अलग नहीं थे। हालाँकि बाद में उनके इस काम को गलत घोषित किया गया। लेकिन इसका कारण क्या है कि उनके अन्दर ऐसी अनुभूति हुई और हमको नहीं होती? मुझे ऐसा लगता है कि क्रान्तियाँ जिस प्रकार से आज तक हुईं उनसे यह तरीका बिलकुल भिन्न है। गांधीजी ने इतना बड़ा काम किया, लेकिन फिर भी अपने देश में ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि कुछ भी नहीं हुआ। यह इसलिए कि वह नये ढंग से हुआ। इस नये ढंग में क्या ताकत थी, उसका इतिहास में क्या असर हुआ, वह उनके ध्यान में नहीं है। इसलिए गांधीजी ने जो किया उसको छोटा बनाया जाय और हिंसा को माननेवाले क्रान्तिकारियों ने जो कुछ किया उसको बड़ा बनाया जाय, ऐसी कोशिश होती है। नेताजी ने जो आजाद हिंद फौज खड़ी की, उसकी जो देन है उसको बड़ा बनाया जाता है। यह कोई युक्तिसंगत बात होती है ऐसा नहीं है। लेकिन चूँकि यह क्रान्ति का नया ढंग था, इसलिए लोग आमतौर पर इसे समझ ही नहीं सके हैं।

आज तक जो क्रान्ति का रूप रहा, वह ऐसा रहा कि समाज में एक अंग है जिसके पास कुछ है, और एक अंग है जिसके पास कुछ नहीं है; जिसके पास नहीं है, उसके द्वारा जिसके पास है उसके पास से ले लेने का, जमीन, कारखाने आदि पर कब्जा कर लेने का, इसके लिए खून बहाने का सारा क्रम चलता रहा है और ऐसा होता है तो हम समझते हैं कि क्रान्ति हो रही है।

क्रान्ति का क्षेत्र गाँव ही क्यों?

अब भारत में दूसरी क्रान्तिकारी प्रक्रिया शुरू है। इसके लिए पहले यह माना गया कि क्रान्ति के स्थान भारत के गाँव हों। यह भी आज की दृष्टि से दुनिया को अनोखी-सी बात लगती है। हालाँकि चीन की क्रान्ति को सामने रखते हुए हम कह सकते हैं कि यह अनोखी बात नहीं है। क्रान्ति का क्षेत्र देहातों को माना गया है। इस पर हमसे बात करनेवाले और बुद्धिवादी लोग कहते हैं कि आपने शहरों को क्यों नहीं लिया? उनको यह समझाना थोड़ा कठिन होता है कि इसका क्या कारण है। उनको जो कारण हम बताते हैं, वह सब आपके सामने पेश करने नहीं जा रहा हूँ। लेकिन एक बात, जिसका स्पष्ट चित्र हम लोगों में से बहुत लोगों को नहीं होगा या जितना होना चाहिए उतना नहीं होगा, निवेदन कर देना चाहता हूँ; वह यह

www.vinoba.in

कि क्रान्ति के बाद क्या होगा समाज का रूप ? नया समाज कैसा बनेगा ? उसमें ही गाँव का जो स्थान है वह एक बड़े महत्त्व का स्थान बन जाता है। समाज की रचना ऐसी हो कि समाज छोटी-छोटी 'कम्युनिटीज' (समुदाय) हों जैसा कि आज के गाँव हैं, ऐसा तो उन्होंने नहीं कहा। इसको तो उन्होंने कहा कि ये तो कूड़े-कचड़े के ढेर हैं। लेकिन इनके बदले में जो नया समाज बनेगा, उसमें कृषि और उद्योग की बराबर बात करते थे। वह तो विकासशील व्यक्ति थे। अब उनके जाने के २२ वर्ष बाद कृषि और उद्योग का क्या हाल हुआ, अब यह कहना बेमानी बात होगी। 'एग्रो-इण्डस्ट्रियल' (कृषि-औद्योगिक) शब्द का हम इस्तेमाल करते हैं, कि कृषि और उद्योग का, दोनों का संतुलन (बैलेंस) होना चाहिए। जैसा कि दुनिया में हर जगह हुआ : चीन में, रूस में, अमेरिका में, जापान में भी, हर जगह यूरोप के देशों में, कि उद्योग (इण्डस्ट्री) का विकास हुआ तो किसानों का शोषण करके और गाँवों को गरीब बनाकरके; तो ऐसा हमारे समाज के अन्दर नहीं हो सकता। गांधीजी ने कहा कि दोनों को समृद्ध करना हो तो दोनों को संतुलित (बैलेंस) करना और उसके अनुकूल तकनीक ले आना होगा। अब ये पुराने चरखे हैं, पुराने तरीके हैं, ये तो जितनी जल्दी हम छोड़ दें, और नये औजार, नयी तकनीक ले आयें उतना ही हमारे देश के लिए, ५० करोड़ की आबादी के लिए उपयुक्त होगा। इसमें जितनी जल्दी हम कर सकें, उतनी जल्दी करना चाहिए।

विज्ञान की तकनीक और समुदाय का आकार ?

लोगों से जब बात करते हैं तो वे कहते हैं कि यह तकनीक का जमाना है, विज्ञान का जमाना है, छोटे-छोटे समुदाय आप सोचते हैं, तो कितने छोटे होंगे ये समुदाय, बड़ा-से-बड़ा आकार क्या होगा ? यह तो हम जैसे-जैसे आगे बढ़ेंगे, अपने-आप स्पष्ट होगा। कोई १०० घरों के गाँव तो नहीं होंगे, २०० घरों के भी नहीं होंगे, लेकिन फिर भी इतने छोटे तो होंगे कि उनमें मनुष्य-मनुष्य का सम्बन्ध मानवीय रह सके, उनमें एक मानवीय पैमाना रह सके। बम्बई, कलकत्ता, शिकागो, टोकियो नहीं बनें, यह प्रयत्न तो जरूर करना होगा। लोग कहते हैं कि तकनीक के जमाने में यह कैसे होगा ? लेकिन हमने विदेशों में देखा कि ऐसा सोचनेवाले लोग हैं, जो यह कह रहे हैं कि यह सब बड़ी भूल हो गयी। आज के जमाने की जो व्यवस्था है, वह मानवीय पैमाने से इतनी दूर हो गयी है कि आदमी तो उसके अन्दर दब-कर मर रहा है, पिस रहा है, दम घुट रहा है, सामुदायिकता उसके अन्दर से खतम हो गयी है।

> पहले का क्रान्तिकारी=रक्त-क्रान्तिवाला क्रान्तिकारी==बाद में सुधारवादी बन जाता है। ऐसा कह सकते हैं कि आज के 'थर्ड वर्ल्ड' में, यानी एशिया-अफ्रीका के गरीब देशों को छोड़कर दुनिया के दूसरे देशों में जितने भी कम्युनिस्ट आन्दोलन हैं, वे एक सुधारवादी आन्दोलन हैं, क्रान्तिकारी आन्दोलन नहीं हैं।

प्रश्न यह है कि तकनीक का क्या होगा ? तो, तकनीक, जैसा कि गांधीजी बराबर कहते थे, आदमी मालिक रहेगा और वह गुलाम रहेगी। यह आवाज उधर पश्चिम से भी निकल रही है कि तकनीक का कोई मानवीय उद्देश्य है ? आज जिस तरह से पश्चिम यूरोप और रूस आदि देशों का विकास हो रहा है, उसमें तकनीक ही मालिक बनती जा रही है। रूस में भी तकनीक दासी है और मानव उसका मालिक है, ऐसा नहीं हो रहा है।

इन बातों को अगर हम समझते हैं, ध्यान में रखते हैं तो फिर गाँवों से हमने क्यों शुरू किया यह समझना आवश्यक होगा। गाँवों में कुछ रूढ़िवादी शक्तियाँ (कन्जर्वेटिव फोर्सेज) हैं, और कुछ क्रान्तिकारी शक्तियाँ (रेवोल्यूशनरी फोर्सेज) हैं। मतलब क्या ? कि जिसके पास जमीन है, जो जमीन के मालिक हैं वे समाज में यथास्थिति (स्टेटस्को) रखनेवाले हैं। वे क्रान्तिकारी (रेवोल्यूशनरी) नहीं होंगे। जो साहूकार-महाजन हैं वे यथास्थिति (स्टेटस्को) रखना चाहते हैं। रक्त-क्रान्ति का जो तरीका है वह क्या है ? जो क्रान्तिकारी शक्तियाँ (रेवोल्यूशनरी फोर्सेज) हैं, उनका एक वर्ग करते हैं, उनको इकट्ठा करके उनके यथास्थिति चाहनेवालों के खिलाफ खड़ा करते हैं। लेकिन ग्रामदान की प्रक्रिया में क्या है ? जो यथास्थितिवाले हैं, जो चाहते हैं कि समाज ज्यों का-त्यों बना रहे, उनको भी क्रान्तिकारी बनाना और दूसरों को भी क्रान्तिकारी बनाना—यह एक नयी पद्धति हो गयी। यह जो नयी पद्धति हो गयी, वह पूरी तरह हमारी समझ में भी नहीं आती, तो दूसरों की समझ में तो आती ही नहीं कि यह कौनसी क्रान्ति है।

जो जमीन का मालिक है, वह केवल दस्तखत ही कर देता है बीसवाँ भाग भूमि का और चालीसवाँ हिस्सा उपज का छोड़ भी दीजिए—केवल इतना भी मानकर कि जो अपनी लीगल टाइटिल है जमीन की, मालिकी का कानूनी अधिकार है, यह मैं छोड़ रहा हूँ, मालिकी को छोड़ रहा हूँ, तो यह कितनी क्रान्तिकारी (रेवोल्यूशनरी) बात हो जाती है ? लेकिन चूँकि कोई तलवार से छीनकर ले नहीं रहा है, तो लगता है कि क्रान्ति नहीं हुई। कानून से कोई मालिकी छीन लेगा ? मैं तो बंगाल में दो-चार जगह बोलकर आया हूँ विश्वविद्यालय में, कि मैं बड़ी उत्सुकता से देख रहा हूँ किस रास्ते से ज्योति बसु आगे बढ़नेवाले हैं, कितना क्रान्तिकारी भूमि-सुधार करनेवाले हैं ? मुझे कोई संदेह नहीं है कि...कि वह यह कर नहीं सकेंगे। नक्सलबारी के पाँव में तो पत्थर भी बँधा हुआ है मुस्लिम लीग के नाम से, जो एक क्रान्तिकारी या वामपंथी पार्टी नहीं कही जा सकती, लेकिन यहाँ तो सभी वामपंथी लोग हैं। ज्योति बसु के पैर को किसीने बाँध नहीं रखा है। तो देखना है कि वह कानून से क्या करते हैं !

तो, तलवार से मालिकी छीन लें तो क्रान्ति हो गयी और वह खुद दे देता है तो क्या वह क्रान्ति नहीं हुई ? इसको समग्र क्रान्ति (टोटल रेवोल्यूशन) कहते हैं। इसमें उसका भी परिवर्तन होता है जो यथास्थिति (स्टेटस्को) में मानता है।

हमारे देश में जो बड़े-बड़े नेता लोग हैं, वे समझते हैं कि सर्वोदयवाले पुरानी लकीर पीट रहे हैं। लेकिन शायद दुनिया की जो सबसे आगे बहनेवाली धारा है, उसके साथ-साथ यह धारा बह रही है, क्योंकि हम भी ग्रामस्वराज्य की बात कहते हैं।

ग्रामदान : सतत क्रान्ति का आरम्भ

अब मान लीजिए कि यह हो गया। तो यहाँ चर्चा हुई कि आगे क्या करना है? बहुत कुछ करना है। सन् १९७२ या बिहार की दृष्टि से सोचें तो सन् १९७४ में पांच वर्ष के बाद वहाँ चुनाव होगा, उसमें गाँव का प्रतिनिधित्व होगा, आदि-आदि सब बातें हम सोचते हैं, लेकिन अभी गाँव में क्या करना है? जैसा कि ट्राटस्की बोल गया था सतत क्रान्ति (परमानेंट रेवोल्यूशन) लाना है। उसको तो इन लोगों ने निकाल दिया था, और कुछ को कतल करा दिया। जो आज सत्ता में आ जाता है वह, सतत क्रान्ति (परमानेंट रेवोल्यूशन) पसन्द नहीं करता है। उसको वह भाता नहीं है। वह तो, जितनी क्रान्ति हो गयी, जिसमें वह गद्दी पर बिठा दिया, तो उसके आगे की क्रान्ति वह चाहता नहीं। पहले का क्रान्तिकारी रक्त-क्रान्तिवाला क्रान्तिकारी, बाद में सुधारवादी (रिफार्मिस्ट) बन जाता है। ऐसा कह सकते हैं कि आज के थर्ड वर्ल्ड में, एशिया-अफ्रीका के गरीब देशों को छोड़कर दुनिया के सारे देशों में जितने भी कम्युनिस्ट आन्दोलन हैं, वे एक सुधारवादी (रिफार्मिस्ट) आन्दोलन हैं, कोई क्रान्तिकारी आन्दोलन नहीं है। जो गरीब देश हैं वहाँ इनका (साम्यवादियों का) क्रान्तिकारी रोल है, लेकिन विकसित मुल्कों में तो इनका बिलकुल सुधारवादी रोल है।

पिछले साल पेरिस में क्रान्ति हुई, उसमें कम्युनिस्ट ट्रेड यूनियन ने क्रान्ति को पकड़कर पीछे खींचने का काम किया, नहीं तो, विद्यार्थियों के साथ हो गये होते! फ्रांस में सन् १७७९, १८३०-३२, १८७१ में तीन-चार क्रान्तियाँ हुईं, जिसका परिणाम निकला जेनरल दगाल। लेकिन इस बार लगता था कि कुछ नया हो जायेगा। क्योंकि वहाँ ऐसा कुछ नहीं था कि क्रान्ति हुई, और वहाँ रोटी का सवाल है, बिजली का सवाल है। वहाँ तो बिजली आदि सब कुछ था। लोग नयी क्रान्ति के लिए तैयार थे, लेकिन इन लोगों ने नहीं होने दिया। जो समाजवादी हैं वे तो हैं ही सुधारवादी, लेकिन यह तो साम्यवादी कहलानेवाले लोगों ने किया।

तो, सतत क्रान्ति (परमानेंट रेवोल्यूशन) की तरफ जाना है। गाँव में ग्रामसभा बनती है। उसमें गाँव की जमीन पर ग्रामसभा की मालिकी कायम होती है, ठीक है। लेकिन ५ प्रतिशत जमीन दी है, बाकी ९५ प्रतिशत जमीन तो उसके पास ही है। उधर बहुत-सारे भूमिहीन लोग हैं। काश्तकार हैं, बँटाईदार हैं, मालिक के नीचे और जितने प्रकार होते हैं, वे सब हैं। एक क्रान्ति के लिए अवसर वहाँ पेश है। ग्रामसभा की बैठक में एक दूसरे के सामने बैठकर वे लोग चर्चा करेंगे। सर्वसम्मति के सिद्धान्त को उसमें डालकर ऐसी क्रान्तिकारी परिस्थिति में क्रान्ति के कदम को आगे बढ़ा ले जाना है। बँटाईदार हैं, क्यों नहीं बोलेगा कि कानून कहता है कि मालिक का हिस्सा एक-चौथाई है और हमारा तीन-चौथाई है, तो हम आपको इतना क्यों दें? यह तो ग्रामराज हमलोगों का राज है, तो ऐसा क्यों होगा? इसका रास्ता निकालिए। तो उसका कोई हल निकलेगा।

कानून की मजबूरी राजनीति की मक्कारी

नटराजन् ने बताया कि यहाँ पर (तमिलनाडु में) 'होम स्टेड टेनेंसी ऐक्ट' वास की जमीन का कानून नहीं है। यानी जिस हरिजन की झोपड़ी जिस जमीन में है, उसका वहाँ कोई अधिकार नहीं है। मैं तो समझता था कि मद्रास बहुत आगे है। कम-से-कम बिहार में कानून तो बना है। लेकिन उसका भी अमल नहीं होता है। राजनीति की मक्कारी देखिए, इसको मैं मक्कारी ही कहूँगा, जब महामाया प्रसाद सिन्हा की हुकूमत बनी, तो हमने उन लोगों के सामने यह प्रस्ताव किया था कि जो कानून हैं, उन पर अमल कीजिए। उसमें एक कानून था 'होम स्टेड टेनेंसी ऐक्ट'। उसके अनुसार जिस जमीन पर उसकी झोपड़ी है, वह उसमें से निकाला नहीं जा सकता है। उस व्यक्ति का नाम दर्ज करने के लिए दरखास्त नहीं देना है। रेवेन्यू आफिसर को जाकरके रिकार्ड कर देना है। १० महीने तक इनका राज था। उन लोगों ने पहले कहा था कि बहुत अच्छा है, हम इसे करेंगे। लेकिन नहीं हुआ। अभी हमने देखा अखबार में, कि बिहार के एस० एस० पी० के नेता श्री कर्पूरी ठाकुर ने वक्तव्य दिया है कि हम लोग संघर्ष (स्ट्रगल) करनेवाले हैं। किसलिए? 'होम स्टेड टेनेंसी ऐक्ट' को अमल कराने के लिए। लेकिन यह खुद १० महीने तक उपमुख्यमंत्री वहाँ रहे। क्या मक्खी मारते रहे? अब कांग्रेस की हुकूमत हुई तो कह रहे हैं कि संघर्ष करेंगे। उस वक्त नहीं किया। क्यों नहीं अपने सदस्यों को कहा कि तुम हमारे खिलाफ संघर्ष करो। कम-से-कम कम्युनिस्ट तो ऐसा कहते हैं कि हमारे खिलाफ संघर्ष करो, शोर करो। गद्दी पर हम आराम से बैठ गये, अपना प्रोग्राम भूल गये, तो उसके लिए आओ, हमारे दरवाजे पर शोर करो!

अब ग्रामदानी ग्रामसभा में वह आदमी कह रहा है हम आपकी जमीन जोतते हैं। हम आपके मजदूर हैं। हम आपकी जमीन पर बसे हुए हैं। जिस जमीन पर बसे हैं, उस जमीन से हम बेदखल कर दिये जायँ, कम-से-कम इतनी गारण्टी तो ग्रामसभा से मिलनी चाहिए। वहाँ महाजन बैठा है ग्रामसभा में। उससे किसान कहेगा कि हम से १२॥ प्रतिशत से ज्यादा सूद नहीं ले सकते। तुम हमसे ७½ प्रतिशत सूद क्यों लोगे? यह ग्रामसभा है। ग्रामराज है। अब यह नहीं चलेगा। तो इन सब बातों की तरफ भी जाना होगा। यह नहीं समझना चाहिए कि ग्रामदान हो गया और ग्रामसभा बन गयी। तीन-चार काम करने के हैं, कर लिये बस हो गया। यहाँ सतत क्रान्ति की प्रक्रिया कायम रहेगी—ग्रामसभा में कोई एक दिन की मजदूरी देगा, कोई एक महीने में एक दिन की आमदनी देगा,

कोई अपनी उपज का हिस्सा देगा। हर कोई कुछ-न-कुछ देगा, तो इससे एक प्रकार की बराबरी बनती है। अगर ऐसा हम सब करते हैं, इतनी दूर तक हमारी ग्रामसभा जाती है, तो फिर ग्राम-स्वराज्य बनता है।

www.vinoba.in

भावी समाज-रचना में सर्वाधिक महत्त्व नीचे का

अब ऊपर क्या होगा, यह तो हम लोग सोच ही रहे हैं। एक बात का आपसे निवेदन कर देना चाहता हूँ। जो भी आगे समाज की रचना करनी है उसमें अधिक-से-अधिक महत्त्व, यह सबसे नीचे का जो स्तर है समाज के जीवन का, समाज के संगठन का, उसका है वह अगर कमजोर है, तो, चाहे किसी प्रक्रिया से उम्मीदवार खड़ा कीजिए और किसी भी प्रकार से विधान-सभा का निर्माण हो, उससे कुछ नहीं होगा। यह जो ग्रामदान का आन्दोलन है, इसमें शक्ति का, सत्ता का, शासन का सबका एक प्रकार से वितरण करना है। इसी प्रकार से हम समाज की रचना चाहते हैं। राज्य की सरकार और केन्द्र की सरकार का भी चुनाव हुआ और फिर भी सत्ता का सम्बन्ध ऊपर से नीचे का उसी तरह का रहा, तो सब विफल हो जायेगा और फिर उलट जायेगा। फिर बाद में किसीको क्रान्ति करनी पड़ेगी। जैसे रूस में फिर से क्रान्ति करनी पड़ेगी, वह तो एक अवस्था तक जाकर रुक गयी है। अब चीन में क्या होगा पता नहीं! वहाँ पर माओ की सतत क्रान्ति चल रही है। सांस्कृतिक क्रान्ति के नाम से वह अपनी पार्टी के खिलाफ लड़ा, और कुछ कर रहा है। अब पता नहीं उसमें से क्या निकलेगा, लेकिन उसमें साम्यवाद का आदर्शवाद है, ऐसा हमको नजर आता है। लेनिन खुद पार्टी और राज्य की नौकरशाही के खिलाफ आवाज उठानेवाला था।

तो, सत्ता का निरसन हो इसके लिए ग्रामराज को मजबूत करना है नीचे से। फ्रांस की क्रान्ति जो मई में हुई, उसे कुछ लोग मानते हैं कि यह अवास्तविक-सी थी और कुछ मानते हैं कि यह बहुत गहरी घटना थी और इसका असर सारी पाश्चात्य सभ्यता पर पड़ेगा। यहाँ से यह एक नयी शुरुआत हो रही है ऐसा मैं मानता हूँ। और जो कुछ मैं समक्ष पाया हूँ अपने अध्ययन से, तो मुझे लगता है कि यह दूसरा विचार जो फ्रांसीसी क्रान्ति का सन् '६८ का है वह शायद ज्यादा सही है। ऐसे समाजों में – हमारे समाज में नहीं—जिनमें बहुत ज्यादा औद्योगिक विकास हुआ है, बहुत ज्यादा समृद्धि हुई है, व्यापक तौर से लोगों में शिक्षा का प्रचार हुआ है, हर तरह के तंत्रज्ञ और विद्वान लोग उनमें हैं, उनकी मदद से यह सारा समाज चल रहा है, जहाँ-जहाँ इस प्रकार का ढाँचा बना है, वहाँ के लिए फ्रांस की क्रान्ति, मैं मानता हूँ कि एक बहुत बड़े कदम के रूप में हुई है। इसको विद्यार्थियों का केवल विद्रोह मानकर छोड़ नहीं देना है।

क्रान्ति का पूर्वनिर्मित ब्लूप्रिण्ट नहीं स्वतःस्फूर्त नयी रचना

एक इसमें विश्वविद्यालय के शिक्षकों की संस्था थी, जो विद्यार्थियों के साथ हो गयी थी, उसके एक नेता के साथ बातचीत हुई। उसका एक पुस्तक में जिक्र है। उससे पूछा गया कि आप कहते हैं कि विश्वविद्यालय खतम होगा, और एक नया विश्वविद्यालय बनेगा, यह सब खतम होगा और एक नया समाज बनेगा, तो वह नया विश्वविद्यालय और नया समाज क्या है? उसका वह जवाब दे रहा है। उसने कहा कि 'मैं कोई विशेषज्ञ नहीं हूँ। कुछ लोगों का खयाल है कि इस क्रान्ति पर कैलीफोर्निया के मारकूजे के विचारों का असर है। ऐसा मैं नहीं मानता हूँ। उनका भी असर है, लेकिन इसके पीछे और बहुत कुछ भी है।' ये कहते हैं कि 'हमारे सामने आगे का पूरा चित्र नहीं है और उसमें हम विश्वास नहीं करते हैं।' इसमें भी यह गांधीजी की तरह बात कर रहे हैं कि हम इसमें विश्वास नहीं करते कि नक्शा (ब्लूप्रिंट)—सा हम बना लें कि क्या होगा। इससे हमारे आन्दोलन की सहजता (स्पाण्टेनियटी) खतम हो जायेगी। इन्होंने कहा कि इस पद्धति की जो विशिष्टता (नावेल्टी) होगी—यह फ्रांस की बात कर रहे हैं, यूरोप में फ्रांस और प० जर्मनी सबसे ज्यादा समृद्ध देश हैं; जो तकनीकी क्रान्ति उधर हुई, उसमें फ्रांस लन्दन से कहीं आगे है—इस पद्धति की जो विशिष्टता है, वह यह कि इसमें प्रत्यक्ष लोकतंत्र है। प्रातिनिधिक लोकतंत्र में विश्वास नहीं, चाहते हैं कि जहाँ तक हो, प्रत्यक्ष लोकतंत्र (डायरेक्ट डेमोक्रेसी) चले। हम लोग यही कहते हैं तो लोग कहते हैं कि 'प्रत्यक्ष लोकतंत्र' (डायरेक्ट डेमोक्रेसी) इतने बड़े समाज में कैसे चलेगी? फ्रांस में कैसे चलेगी? ये बुद्धिमान लोग हैं, और उस क्रान्ति के नेता हैं, और ऐसी बात कर रहे हैं। फिर उन्होंने कहा :

"यह कहना असम्भव है कि यह प्रयोग पूरे समाज पर लागू किया जा सकता है, लेकिन यह जाहिर है कि अधिकार किसी कार्यकारिणी, संसद या विधान-सभा को देने के सिद्धान्त को चुनौती दी गयी है। इस क्रान्ति में जितने लोगों को आपने प्रवक्ता बनाया उनमें से किसीको नीचे के स्तर की मीटिंग करके वापस कर लेंगे।" वह जो सामूहिक नेतृत्व (कलेक्टिव लीडरशिप) की बात चली, गणसेवकत्व की बात चली, वह सारा इसके अन्दर है। फिर वह कहते हैं कि "सत्ता के लिए काम की जो जगह है, उसी जगह सत्ता रहे, चाहे श्रमिकों का कारखाना हो, चाहे खेतिहरों का 'फार्म' हो, चाहे विद्यार्थियों का विद्यालय हो। काम करनेवाले के स्तर पर, जहाँ काम होता है उस स्तर के लिए सत्ता की माँग है। सत्ता की माँग ऊपर के स्तर के लिए नहीं है।"

हमारे देश में जो बड़े-बड़े राजनीतिक नेता लोग हैं वे समझते हैं कि सर्वोदयवाले पुरानी लकीर पीट रहे हैं। लेकिन आपको इसे पढ़कर सुनाया, इसलिए कि पढ़कर उत्साह होगा। अब यह सब पढ़ने से लगता है कि शायद दुनिया की जो सबसे आगे बहनेवाली धारा है, उसके साथ-साथ यह धारा वह रही है, क्योंकि हम भी ग्रामस्वराज्य की बात करते हैं।

तिरुपति : सर्व सेवा संघ-अधिवेशन में दिया गया भाषण : २४ अप्रैल '६९।

भूदान तहरीक (उर्दू)

पाक्षिक पत्रिका का वार्षिक शुल्क : ४ रुपये

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, वाराणसी–१

एक विनती

www.vinoba.in

युद्ध-विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय संघ का १३ वाँ त्रैवार्षिक सम्मेलन इस साल—अगस्त २५ से ३१ तक—अमेरिका के फिलडेल्फिया स्टेट में हावेरफार्ड कालेज में होनेवाला है। (यह स्थान न्यूयार्क से करीब दो घंटे के सफर का है।) इस सम्मेलन के दो विशेष महत्त्व हैं। पहला यह कि यह गांधी-शताब्दी के साल में हो रहा है। दुनिया के शान्तिवादी बीसवीं सदी के लिए गांधी की देन का अध्ययन करें, उसकी सार्थकता की जाँच-पड़ताल करें, इसका तकाजा आज जितना है, उतना पहले कभी नहीं हुआ है। क्रान्ति व शोषण-मुक्ति अहिंसा के द्वारा सध सकती है या हिंसा और रक्तपात ही आगे का रास्ता है, जैसे कि आज दुनिया के दलित और पीड़ित मानने लगे हैं, यह प्रश्न अब टल नहीं सकता है। इसलिए इस सम्मेलन का मुख्य विचारणीय विषय रहेगा—मुक्ति और क्रान्ति—गांधी का आवाहन।

दूसरा, यह पहली बार एक विश्वशान्ति परिषद पश्चिमी गोलार्द्ध में हो रही है। शान्ति चाहनेवालों तथा शान्ति के लिए चिन्ता करनेवालों का एकसाथ मिलना आज और कहीं इतना ही उचित नहीं होगा जितना कि अमेरिका में, जो साम्राज्यवादी शक्ति का केन्द्र है, संसार के दो सबसे बड़े आणविक संहार-शक्तिवालों में से वह एक है। सारे इतिहास में कभी किसी राष्ट्र के पास इतनी विनाशक शक्ति नहीं रही है, जितनी आज अमेरिका के पास है। और उसी अमेरिका में आज दुनिया एक ऐसे सक्रिय और प्रभावशाली शान्ति-आन्दोलन को भी देख रही है, जिसने इतनी बड़ी सत्ता को भी वियतनामियों के साथ शान्ति की बातें शुरू करने के लिए बाध्य किया। इसी अमेरिका में हजारों नौजवान अपने 'ड्राफ्टकार्ड' (अनिवार्य सैनिक-सेवा का आज्ञापत्र) खुलेआम जला रहे हैं या शान्तिपूर्वक अधिकारियों को वापस कर रहे हैं, जिसके लिए उन्हें सालों तक जेल की सजा भुगतनी होगी। अब वहाँ के सिपाही भी सैकड़ों की संख्या में शान्ति-यात्राओं में शामिल हो रहे हैं।

युद्ध-विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना पहले विश्वमहायुद्ध के बाद हुई। उसका काम मुख्यतः आन्तरिक चेतना की पुकार के अनुसार युद्ध से इनकार करनेवालों को सहायता देने तथा ऐसे इनकार का हक सरकारों द्वारा मान्य कराने का रहा। संघ ने मानवता के नाते युद्धमात्र का निषेध किया। उनकी प्रतिज्ञा में कहा है कि "युद्ध मानवता के प्रति अपराध है। इसलिए मेरा निश्चय है कि मैं किसी भी युद्ध का समर्थन नहीं करूँगा और युद्ध के सभी कारणों के निराकरण के लिए प्रयत्न करूँगा।" यह विश्वास-पत्र सर्वथा सही होने पर भी बहुत अर्से तक पैसिफिस्टों का काम युद्ध-विरोध का ही रहा, दुनिया के सामाजिक, राजनैतिक ढाँचे में जो युद्ध के कारण निहित हैं, उनकी तरफ उन्होंने कम ही ध्यान दिया। अब कुछ सालों से यह स्थिति बदल रही है। यह तो आज दुनिया के बड़े-बड़े विचारक और राजनीतिज्ञ—यहाँ तक कि मिलिटरीवाले भी—कह ही रहे हैं कि किसी भी विवाद का हल शस्त्रबल से ढूँढ़ना निरर्थक ही नहीं, बर्बरता और क्रूरता भी है, समझ और सहानुभूति के साथ विचार-विनिमय से ही राष्ट्रों के बीच के झगड़े खतम किये जा सकते हैं। लेकिन जबतक शोषण और दमन हो, जब दुनिया संपत्ती और अभाव-ग्रस्तों में बँटी हो तबतक यह समझदारी का वातावरण हो भी कैसे सकता है? इसलिए युद्ध-विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय संघ अब केवल युद्ध-निषेध की भूमिका से आगे बढ़कर अपने प्रतिज्ञा-पत्र के दूसरे भाग पर ज्यादा ध्यान दे रहा है—अन्य प्रगतिशील आन्दोलनों के साथ इन सवालों का हल ढूँढ़ने तथा लोकमत को शिक्षित करने के कार्य में अधिकाधिक अग्रसर हो रहा है। उनके सम्मेलन में चार दिन इन्हीं विषयों को लेकर गहराई के साथ काम करने की योजना है। एजेण्डा इस प्रकार है : आरम्भिक बैठक, स्वाधीनता और क्रान्ति; दूसरी बैठक, संकुचितता से मुक्त राष्ट्रीयता और अहिंसा का स्थान; तीसरी बैठक, सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन के द्वारा मुक्ति; चौथी बैठक, सब विभाजनों के परे। इसके अलावा इन खास मुद्दों पर टुकड़ियों में बैठकर काम होगा—विद्यार्थियों और तरुणों के आन्दोलन, जापान-अमेरिका सुरक्षा-सन्धि, मध्यपूर्वी देशों का सवाल, नाटो और वारसा पैक्ट, यूरोपीय सुरक्षा, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका, अल्पसंख्यकों के सवाल।

भारत का सर्वोदय-आन्दोलन आज दुनिया में अहिंसक सामाजिक क्रान्ति का निःसंशय ही अग्रणी है। दूसरे कौनसे देश में हजारों की संख्या में इतने कार्यकर्ता एकाग्र निष्ठा के साथ अहिंसक समाज-परिवर्तन के काम में जुटे हैं? और कहाँ इतने विशाल क्षेत्रों ने इन सिद्धान्तों को अपनाया है और अपने जीवन में कार्य-रूप देने में लगे हैं? भारत के इस अनोखे आरोहण की सही जानकारी तथा उसमें लगे कार्यकर्ताओं से उनके अनुभवों की कहानी सुनने का लाभ इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन को मिले, यह नितान्त आवश्यक है। दूसरे देशों के विचारकों, शान्तिवादियों तथा कार्यकर्ताओं से मिलना और उनसे विचारविनिमय करना भारत के शान्तिवादियों को भी जरूर लाभप्रद होगा।

अमेरिका का युद्ध-विरोधी संघ (वार-रेसिस्टर्स लीग) के, जो इस सम्मेलन का आतिथ्य कर रहा है, मंत्री डेविड मेकरेनाल्ड ने हमें लिखा है, कि भारत से अधिक-से-अधिक प्रतिनिधि इस सम्मेलन में भाग लें, यह उनका आग्रहपूर्वक निवेदन मैं आपके पास पहुँचाऊँ। आपके लिए उनका आदरपूर्ण आमंत्रण है।

हम जानते हैं कि इसमें खर्च, समय वगैरह का सवाल कठिन है। फिर भी आज के जागतिक सन्दर्भ में इस सम्मेलन में आपका योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण होगा। हमारी विनती है कि कठिनाइयों के बावजूद कार्य के महत्त्व को देखते हुए सर्वोदय-जगत् से एक अच्छा ग्रुप इस सम्मेलन में आने के लिए प्रस्तुत हो।

—जानकी देवीप्रसाद

पठनीय **नयी तालीम** मननीय

शैक्षिक क्रान्ति की अग्रदूत मासिकी

वार्षिक मूल्य : ६ रु०

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी-१

www.vinoba.in

क्रान्तिकारी दार्शनिक इवान स्विताक : एक मुलाकात

[यद्यपि आज चेकोस्लोवाकिया की राजनीतिक स्थिति अस्थिरता की चाक पर चक्कर खा रही है, नोवोतनी की छाया फिर मँडराती-सी दिखाई पड़ रही है, डुबचेक सहित जनतंत्रीकरण की जनचेतना दबा दी गयी मालूम पड़ती है, लेकिन स्टालिनवादी सूत बनकर सोवियत संघ इसमें सफल हो सकेगा ? प्रस्तुत मुलाकात पढ़कर आप स्वतः कह उठेंगे···नहीं···नहीं···नहीं···! —सं०]

जिस तरह पश्चिमी यूरोप में बर्लिन और पेरिस के छात्र-आन्दोलनों ने यूरोप की आन्तरिक उथल-पुथल को वाणी दी, उसी तरह पूर्वी यूरोप में मास्को में तरुण लेखकों की गिरफ्तारी, वारसा में छात्रों का प्रदर्शन और चेकोस्लोवाकिया में राजनैतिक परिवर्तन यूरोपीय चेतना के नये निशान हैं। सन् १९६८ का जाड़ा और वसन्त काफ्का की नगरी प्राहा के लिए एक अन्तर्द्वन्द्व का जाड़ा और वसन्त था। अप्रैल की धूप ने जहाँ शरीर को गरमाया वहाँ राजनैतिक कशमकश ने दिमाग में गरमी पैदा की। श्री डुबचेक और स्वोबोदा ने संयुक्त रूप से जब श्रीमान नोवोतनी साहब को बाअदब गद्दी से नीचे उतारा तब मैं प्राहा के ऊँचे गुम्बदोंवाले कासल (महल) के स्पेनिश हॉल (पार्लियामेंट) में साक्षी के रूप में उपस्थित था। कल तक जिनका वचन कानून की तरह सारे देश में शिरोधार्य किया जाता था, कल तक जो बेताज के बादशाह और बिना शक के डिक्टेटर थे, वे ही नोवोतनी साहब मेरे बगलवाली कुर्सी पर एक निर्जीव दर्शक की भाँति बैठे थे। मुझे इस बात की कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि किसी दिन नोवोतनी साहब मेरे बिलकुल बगल में होंगे और उनका परिचय करानेवाला भी कोई नहीं होगा।

इस रक्तहीन क्रान्ति और शांतिपूर्ण सत्ता-परिवर्तन ने मेरे मन में एक नयी यूरोपीय क्रान्ति की आशा पैदा की। मैं जानना चाहता था : इस उथल-पुथल की स्पष्ट व्याख्या, और इसलिए साइंस एकेडेमी के दार्शनिक एवं राजनैतिक विचारक श्री इवान स्विताक से मैंने कुछ सवाल पूछे। "इवान, क्या आप भी व्यक्तिगत रूप से नोवोतनी एण्ड कम्पनी की तानाशाही के पहिये के नीचे थे ? आखिर वह कैसी तानाशाही थी ?" मैंने पूछा। "समाजवाद के नाम पर असमाजवादियों की यह तानाशाही थी। पार्टी के नाम पर और प्रोलेटेरियट के नाम पर कुछ मुट्ठी भर नये मालिकों की यह तानाशाही थी। 'सोचो मत' और 'बोलो मत', इन दो मंत्रों के इर्दगिर्द हमारा जीवन चल रहा था। सोवियत संघ में शायद (?) स्टालिन मर चुका था, पर प्राहा की गद्दी पर स्टालिन की छाया राज्य कर रही थी। सन् १९५६ में सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के बीसवें अधिवेशन के बाद मैंने अपना मुँह खोलने की कोशिश की। पर तुरन्त मेरा मुँह सी दिया गया।

सतीश कुमार

युगोस्लाविया के लोकस्वराज्य की भाँति चेकोस्लोवाकिया में भी स्व-शासन तथा लोकशाही की ओर हमें बढ़ना चाहिए, इतना ही मैंने कहा था। मैं मार्क्सवादी हूँ और देशभक्त भी हूँ, पर मेरा मार्क्सवाद और मेरी देशभक्ति तत्कालीन शासकों के लिए सुविधाजनक नहीं थी, इसलिए मुझ पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। उसके बाद पाँच साल तक मैं अपनी कोई भी रचना प्रकाशित नहीं करा सका। यहाँ तक कि किसी लघु-पत्रिका में, प्राहा से नहीं, बल्कि किसी छोटे नगर से प्रकाशित पत्रिका में भी मेरी रचनाएँ नहीं छप सकती थीं। फिर सन् १९६४ में मेरे और पार्टी-मालिकों के बीच दूसरा संघर्ष हुआ। मैंने बहुत नम्र तरीके से कम्युनिस्ट पार्टी की सांस्कृतिक नीतियों की समीक्षा की। मैंने कहा कि प्रशासन द्वारा सांस्कृतिक गतिविधियों को दिशानिर्देश नहीं दिया जा सकता। संस्कृति अपनी स्वयं की गति से ही आगे बढ़ सकती है। मेरी इस सामान्य-सी आलोचना के कारण मुझे साइंस एकेडेमी से बाहर निकाल दिया गया। मैं एक लम्बे अर्से तक बेकारी की यातना भोगने के लिए मजबूर कर दिया गया। साइंस एकेडेमी के मेरे साथियों ने मुझे एकेडेमी से निकाले जाने का विरोध भी किया, पर ऊपर के मालिकों की नाराजगी का मैं शिकार था। उसके बाद न केवल मेरी कोई रचना प्रकाशित नहीं हो सकती थी, बल्कि मेरा नाम तक कहीं उद्धृत नहीं किया जा सकता था। मैं चेकोस्लोवाकिया से बाहर कहीं यात्रा पर भी नहीं जा सकता था। पर अब से जनतंत्रीकरण की यह नयी राजनैतिक यात्रा प्रारम्भ हुई है, मुझे साइंस एकेडेमी का काम वापस मिल गया है। मेरी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं। विदेश-यात्रा के लिए पासपोर्ट भी मिल गया है। मेरे इन व्यक्तिगत अनुभवों की कहानी से आप समझ सकते हैं कि हमारे यहाँ किसी तानाशाही थी।"

"आपने कहा कि चेकोस्लोवाकिया में जनतंत्रीकरण की नयी राजनैतिक यात्रा प्रारम्भ हुई है। खूनभरी तानाशाही के बाद यह यात्रा कैसे प्रारम्भ हो सकी ?" मैंने जानना चाहा।

"कुछ लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि यह यात्रा किसी पूर्वयोजना का परिणाम है, या इस यात्रा की कोई तैयारी की गयी थी, या कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति ने इस यात्रा की व्यूह-रचना की। पर ये सारी कल्पनाएँ भ्रमपूर्ण हैं। असल में यह यात्रा जनमानस की स्वातंत्र्य आकांक्षा का स्वाभाविक परिणाम है। यह यात्रा पूरी तरह स्वतःस्फूर्त (स्पोंटेनियस) है। पार्टी के नये मंत्री डुबचेक ने इस यात्रा के लिए आवाहन नहीं दिया, बल्कि लोक-मानस की अभिलाषाओं को उन्होंने अभिव्यक्त किया। इसलिए इस यात्रा का श्रेय सही अर्थ में लोक-मानस को ही दिया जाना चाहिए। विशेष रूप से सन् १९६० के बाद से लेखक, बुद्धिजीवी, विद्यार्थी और कारखानों के लोग जहाँ-तहाँ इस जनतंत्रीकरण के लिए उतावले हो रहे थे। कितने ही लेखकों ने बार-बार खतरे उठाकर जनतंत्रीकरण के लिए आवाज उठायी। मेरी तरह से कितने ही बुद्धिजीवी उपेक्षित और अपमानित किये गये। उस सारी लम्बी

साधना, लम्बी प्रक्रिया और सतत जन-आकांक्षा का यह परिणाम है कि हम इस नयी लोक-यात्रा पर रवाना हुए हैं।

"इस जनतंत्रीकरण के पीछे चेकोस्लोवाकिया की डगमगाती हुई आर्थिक स्थिति भी बहुत बड़ा कारण है। सन् १९६० के बाद से देश के पढ़े-लिखे लोग, विशेष रूप से तरुण इंजीनियर्स, मैनेजर्स, टेक्नीशियन्स और डायरेक्टर्स यह अनुभव करने लगे थे कि ऊपर के मुट्ठी भर बूढ़े लोगों के हाथ में इतना अधिक नियंत्रण है और आर्थिक सत्ता का इतना बुरी तरह केन्द्रीकरण हो गया है कि जिसके कारण कोई भी मौलिक प्रयोग, कोई भी बुनियादी उपक्रम और कोई भी साहसिक कदम उठाना असम्भव बन गया है। परिणामस्वरूप आर्थिक प्रगति एकदम रुक गयी थी, उलटे देश की कुल आर्थिक स्थिति ह्रास की ओर थी।"

'इवान, आपने जनतंत्रीकरण के दो मुख्य कारण बताये : पहला, स्वातंत्र्य के लिए व्यापक आकांक्षा और बुद्धिजीवियों द्वारा उसकी अभिव्यक्ति, तथा दूसरा, आर्थिक स्थिति का ह्रास। क्या आप पहले कारण की थोड़ी और स्पष्ट व्याख्या करेंगे ? आखिर वह कौनसा बिन्दु था, जहाँ जन-आकांक्षा अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई दी ?" मैंने इवान को बीच में रोकते हुए पूछा।

"सन् १९६७ की गरमियों में जब हमारे लेखक-संघ का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था तब उस अधिवेशन में चार-पाँच लेखकों ने देश की कुल परिस्थिति का आलोचनात्मक विश्लेषण किया। इन लेखकों ने बड़े साहस के साथ कहा कि हमारे देश में जो कुछ चल रहा है, वह समाजवाद नहीं है और उन्होंने यह भी कहा कि समाजवाद एवं जनतंत्र के बीच कोई अन्तरविरोध नहीं है, बल्कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और एक के बिना दूसरा अधूरा है। इस आलोचना ने सोयी हुई जन-आकांक्षा को जगा दिया, परन्तु सत्ताप्रेमी नोवोतनी और उनके मित्रों को भला यह कटु आलोचना कैसे सहन हो सकती थी ! ये लेखक लेखक-संघ से बहिष्कृत किये गये। लेखक-संघ की साहित्यिक पत्रिका के सम्पादक मण्डल से इनको निकाल दिया गया। इस कार्रवाई की भी तरुण लेखकों, समीक्षकों, कवियों, विद्यार्थियों और अध्यापकों पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई और वही प्रतिक्रिया अपने प्रचण्ड रूप में कम्युनिस्ट पार्टी के सन् १९६८ की सर्दियों के अधिवेशन में प्रतिध्वनित हुई। यह कहा जा सकता है कि सन् १९६७ की गरमियों के लेखक-सम्मेलन ने सन् १९६८ की सर्दियों के कम्युनिस्ट-सम्मेलन को आकृति दी और यह जनतंत्रीकरण की नयी लोक-यात्रा प्रारम्भ हो सकी। यह भी कहा जा सकता है कि सन् १९६८ की चेक-क्रान्ति का नेतृत्व बुद्धिजीवियों ने किया।"

मैंने विषय को भविष्य की तरफ मोड़ते हुए पूछा : "आखिर इस जनतंत्रीकरण की यात्रा की मंजिल कहाँ है ?"

दार्शनिक इवान स्विताक

"मेरी दिलचस्पी मंजिल में नहीं, बल्कि मार्ग में है। कौन जानता है कि हम मंजिल तक पहुँचेंगे भी या नहीं और यदि पहुँचे भी तो न जाने वह मंजिल कैसी होगी ? इसलिए अज्ञात मंजिल की चिन्ता छोड़कर ज्ञात मार्ग में मेरी ज्यादा रुचि है। राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक गतिविधियों के सम्बन्ध में निर्णय लेने का हक प्रत्येक नागरिक को मिले, यही हमारा मार्ग है। हम समाजवाद की बुनियादी उपलब्धियों से पीछे नहीं हटना चाहते। हमारा जनतंत्र पूँजीवादी बुर्जुआ जनतंत्र से भिन्न होगा। राज-काज में सामान्य नागरिक साझीदार हो यह हमारी आकांक्षा है। किताबों के समाजवाद को हम जीवन का समाजवाद बनाना चाहते हैं। हमारी मुख्य समस्या यह है कि किस तरह समाजवादी जनतंत्र का साक्षात्कार हो ? आखिर समाजवादी जनतंत्र क्या है ? समाजवाद और जनतंत्र के बीच किस तरह समन्वय पैदा किया जाय ? पश्चिमी यूरोप और अमेरिका में जिस तरह की औपचारिक लोकशाही और संसदीय प्रणाली चल रही है, वह हमारे लिए मॉडल नहीं हो सकती। इसलिए एक आन्तरिक संघर्ष में से नया मार्ग ढूँढ़ने की कोशिश हम कर रहे हैं। हमारी इस कोशिश के नजदीक यदि कोई प्रयोग चल रहा है तो वह युगोस्लाविया का लोक-स्वराज्य है। हमें अपने ढंग से, अपनी प्रकृति के अनुसार अपना मार्ग ढूँढ़ना होगा।"

"आपने कहा कि हम समाजवाद की उपलब्धियों से पीछे नहीं हटना चाहते। तब फिर सोवियत-कम्युनिस्ट पार्टी को यह चिन्ता क्यों सता रही है कि चेकोस्लोवाकिया जनतंत्र के नाम पर कहीं समाजवाद से ही पीछे न हट जाय ?" मैंने पूछा।

"सोवियत संघ में जो शीर्षस्थ सत्ताधारी हैं, उनको चेकोस्लोवाकिया का जनतंत्रीकरण खतरनाक लगता है। वे जानते हैं कि हमारी यह नयी यात्रा किसी अमुक प्रकार की नीति में परिवर्तन मात्र नहीं है, बल्कि यह एक आन्तरिक कायाकल्प है। रूमानिया ने सोवियत संघ के सन्दर्भ में अपनी विदेश नीति थोड़ी बदली है, पर आन्तरिक ढाँचा ज्यों-का-त्यों है, पर चेकोस्लोवाकिया अपने समाज के आन्तरिक ढाँचे को बदल रहा है। यह परिवर्तन निश्चय ही हंगरी, पोलैंड, पूर्वी जर्मनी और यहाँ तक कि सोवियत संघ के जन-मानस को प्रभावित करेगा। प्राहा से लुढ़का हुआ यह स्नो बॉल मास्को पहुँचते-पहुँचते काफी बड़ा और शक्तिशाली बन सकता है। इस समय दुनिया भर के प्रतिभासम्पन्न मार्क्सवादी विचारक जहाँ एक ओर सोवियत-अधिनायकवाद पर ऊंगली उठाकर सामान्य नागरिक की साझीदारी पर जोर दे रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर सोवियत नौकरशाही पर ऊँगली उठाकर क्रान्तिकारी साम्यवाद पर जोर दे रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में सोवियत-नेताओं के लिए अपने अस्तित्व की रक्षा का सवाल पैदा

www.vinoba.in

३१ मई तक बिहारदान की योजना

बिहार में कुल १७ जिले हैं, उनमें से ९ जिले जिलादान हो गये हैं—दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया, सारन, चम्पारन, गया, मुंगेर और धनबाद। जिलादान होने के बाकी हैं—पलामू, हजारीबाग, भागलपुर सिंहभूम, संथाल परगना, शाहाबाद, पटना और रांची।

पलामू—पलामू में २५ प्रखंडों में से १५ प्रखंडदान हो गये हैं और ६ बाकी हैं। स्वामी सत्यानंदजी यहां काम कर रहे हैं। ३१ मई तक जिलादान होने की उम्मीद है।

हजारीबाग—इस जिले में ७ प्रखण्डदान हुए हैं, ३५ बाकी हैं। तूफान जोर पकड़ा है। शक्ति कम होते हुए भी अभियान चल रहा है। श्यामप्रकाशजी और रामनंदन बाबू यहां काम कर रहे हैं। शिक्षकों और सरकारी कर्मचारियों की मदद मिल रही है। यह भी महीने के अन्त तक जिलादान हो जाने की उम्मीद है।

भागलपुर—इस जिले में अभी ७ प्रखण्डों का दान बाकी है। खादी-ग्रामोद्योग संघ की ओर से काम हो रहा है। डा० रामजी सिंह का पूरा सहयोग मिल रहा है। वहां ढेबर भाई का कार्यक्रम इस महीने में होनेवाला है।

संथाल परगना—संथाल परगना में १२ प्रखण्डदान हुए हैं और २९ बाकी हैं। खादी-कार्यकर्ताओं का सहयोग यहां मिल रहा है।

शाहाबाद—इस जिले में अभियान थोड़ा कमजोर है। श्री रामेश्वर राय और श्री राधामोहन राय, भूतपूर्व एम० एल० ए० काम कर रहे हैं। बक्सर अनुमण्डल में सघन रूप से काम उठाया गया है। यहां जयप्रकाशजी का दौरा इस महीने में होगा। बिहार गांधी-शताब्दी समिति के सहायक मंत्री श्री मथुरा प्रसाद सिंह इसके लिए नियुक्त किये गये हैं। मुजफ्फरपुर के कुछ कार्यकर्ता भी यहां काम करनेवाले हैं।

पटना—जोरों से काम चल रहा है। १६ प्रखंडदान हो गये हैं, १२ बाकी हैं।

रांची—रांची में अभी ही काम शुरू हुआ है। कुल ४२ प्रखण्ड हैं, कोई प्रखण्डदान अभी तक नहीं हुआ है। यह बिहार का सबसे बड़ा जिला है, आदिवासी इलाका है। प्रखण्ड-स्तर पर मीटिंग हो रही है। विनोबाजी के सान्निध्य में सरकारी कर्मचारियों की, शिक्षकों की, शिक्षा-पदाधिकारियों की और सर्वोदय-कार्यकर्ताओं की बैठक हुई थी। व्यूह-रचना की गयी है। सब पार्टियां एकसाथ मिलकर काम में लग जायेंगी, ऐसा उन्होंने आश्वासन दिया है। विनोबाजी रांची में ही रहकर बिहारदान का नेतृत्व करेंगे, ऐसी संभावना है। बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति का दफ्तर भी रांची में आ गया है।

सिंहभूम—इस जिले में ५ प्रखण्डदान हुए हैं। २७ प्रखण्ड बाकी हैं। यहां के मुख्य कार्यकर्ता श्यामबहादुर भाई के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के बाद काम स्थगित हो गया। अब फिर चालू करने का प्रयत्न हो रहा है। मनमोहनजी का दौरा यहां होगा। यह जिला उड़ीसा से लगा हुआ है, इसलिए मनमोहनजी का अच्छा प्रभाव यहां होगा। मुंगेर के गोखले भाई भी यहां के काम में मदद करने के लिए आयेंगे।

कुछ विशेष बातें—जयप्रकाशजी का पूरा समय बिहारदान के लिए मिलनेवाला है। अभियान और अर्थ-संग्रह के लिए वे दौरा करेंगे। सर्वश्री कृष्णवल्लभ सहाय, ब्रजा बाबू, सरजू प्रसाद—गांधी स्मारक निधि के मंत्री, जयलोक ठाकुर, निर्मलचन्द्र वगैरह बिहारदान में पूर्ण सहयोग दे रहे है। डा० पटनायक आ गये हैं। निर्मला देशपाण्डे, मनमोहनजी जैसे अन्य लोगों का समय बिहारदान के लिए मिला है।

पूर्णिया जिले के १४ कार्यकर्ता रांची में काम करनेवाले हैं। गया के कार्यकर्ता हजारीबाग के तीन प्रखण्डों में काम करेंगे।

बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ बिहारदान के काम के लिए डेढ़ लाख रुपये खर्च करनेवाला है। और आर्थिक धन इकट्ठा करने की कोशिश हो रही है। जयप्रकाशजी का पूरा समय इस काम में मिल रहा है। उसी तरह श्री कृष्णवल्लभ सहाय का भी समय इस काम के लिए प्राप्त हुआ है।

—हरिहरन्

→हो गया है। यह सारी कशमकश अस्तित्व-रक्षा के लिए ज्यादा है और समाजवाद की रक्षा के लिए कम। यदि प्रश्न समाजवाद की रक्षा का हो तो चेकोस्लोवाकिया से तिल भर भी खतरा नहीं है। क्योंकि चेक-नेतागण अथवा चेक जनता सोवियत-विरोधी नहीं है। बल्कि नाजी-जर्मनों से सोवियत संघ ने चेकोस्लोवाकिया को मुक्त किया, इसलिए आम चेक नागरिक की सोवियत संघ के प्रति विशेष सहानुभूति है। इसके अलावा हम वारसा-सन्धि से भी बंधे रहना चाहते हैं। सोवियत-नेताओं का भय अनावश्यक है। मुझे उम्मीद है कि सोवियत-नेता दूरदर्शी बनेंगे और कल्पना-शक्ति से काम लेंगे। मार्क्सवादी समाज-रचना के विकास में चेक-प्रयोग मील का पत्थर बनेगा।"०

विनोबाजी का कार्यक्रम

दिनांक	समय	स्थान
६ जून	२½ दिन	रांची से रवाना
६ ,,	४½ ,,	गोला पहुंचना
७ ,,	२½ ,,	गोला से रवाना
७ ,,	४½ ,,	धनबाद पहुंचना
९ ,,	२½ ,,	धनबाद से रवाना
९ ,,	४½ ,,	पुरूलिया पहुंचना
१०,,	२½ ,,	पुरूलिया से रवाना
१०,,	५½ शाम	रांची पहुंचना

(१) पता :—विनोबा-निवास, बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ, खादी भंडार, रांची (बिहार)

(२) धनबाद का पता :—विनोबा-निवास, बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ, बिक्री-केन्द्र, नया बाजार, धनबाद। फोन नं० ३४५९

—कृष्णराज मेहता

धीरेन्द्र भाई का कार्यक्रम

२९ से ३० मई तक फतेहगढ़

पता : श्री गांधी आश्रम उत्पत्ति केन्द्र, फर्रुखाबाद ३ जून से ५ जून तक मिर्जापुर

पता : बनवासी सेवाश्रम, गोविन्दपुर (दुद्धी) जि० मिर्जापुर

६ से ७ जून तक वाराणसी

पता: सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी-१

www.vinoba.in

* गांधी-शताब्दी कैसे मनायें ? *

★ आर्थिक व राजनैतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए ग्रामदान-आन्दोलन में योग दें।

★ देश को स्वावलम्बी बनाने और सबको रोजगार देने के लिए खादी, ग्राम और कुटीर-उद्योगों को प्रोत्साहन दें।

★ सभी सम्प्रदायों, वर्गों, भाषावार समूहों में सौहार्द-स्थापना तथा राष्ट्रीय एकता व सुदृढ़ता के लिए शांति-सेना को सशक्त करें।

★ शिविर, विचार-गोष्ठी, पदयात्रा वगैरह में भाग लेकर गांधीजी के संदेश का चिंतन-मनन और प्रसार करें, उसे जीवन में उतारें।

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी-समिति),
हुंकलिया भवन, कुम्हीगरों का भैरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

आन्दोलन के समाचार

www.vinoba.in

उत्तर प्रदेश की चिट्ठी

अप्रैल में ग्रामदान-अभियानों की शृंखला से हमारे प्रदेश के कार्यकर्ताओं में नयी उमंग परिलक्षित होने लगी है। ३९ जिलों में ग्रामदान हो चुके थे। शेष १५ जिलों में अभियान शुरू करने की योजना स्थानीय कार्यकर्ताओं ने की और जनसहयोग प्राप्त कर अभियान शुरू कर दिये।

० जौनपुर में ६ मार्च से अभियान शुरू हुआ। डोभी ब्लाक के १२२ में से १०८ गांवों का ग्रामदान होने से डोभी प्रखण्डदान हुआ। जौनपुर से सटा हुआ जिला सुल्तानपुर था। यहाँ भी अबतक ग्रामदान नहीं हुए थे। १६-१७ अप्रैल को शिविर हुआ और कार्यकर्ता क्षेत्र में गये। २९ अप्रैल को इस जिले का प्रथम ब्लाक अखण्डनगर का प्रखण्डदान हो गया। इसमें १२८ में से ११४ ग्रामदान हुए हैं। और इसी प्रकार बदायूँ जिला भी ग्रामदान से अछूता था। वहाँ भी रजपुरा विकास खण्ड में ५३ ग्रामदान हुए और यह प्रखण्डदान भी पूरा हुआ। यह बड़े उत्साह की बात है कि जौनपुर, सुल्तानपुर और बदायूँ जिलों में ग्रामदान का अभियान ही प्रखण्डदान से शुरू हुआ है—जिलादान की मंजिल ऐसे उत्साही कार्यकर्ताओं के लिए दूर नहीं रहेगा।

० कानपुर की पुखरायाँ तहसील में १३ से १९ अप्रैल तक अभियान चला। इसमें डा० दयानिधि पटनायक श्री कामतानाथ गुप्त (रिटायर्ड जज), श्री बृजगोपाल मिश्र ने विशेष मार्गदर्शन किया। कानपुर के इस अभियान-क्षेत्र में एक राजनीतिक नेता द्वारा विरोधी वातावरण बनाने की कोशिश की गयी, किन्तु कार्यकर्ताओं के व्यक्तिगत सम्पर्क से आशातीत उपलब्धि हुई है। १७ अप्रैल को सुल्तानपुर के अखण्डनगर ब्लाक का शिविर था, जिसमें श्री विचित्र नारायण शर्मा, श्री जज साहब, और श्री देवकरण भाई का मार्गदर्शन मिला। इसी अवसर पर बी०डी०सी० की मीटिंग भी हुई थी, जिसके कारण गांव-गांव में ग्रामदान का विचार आसानी से फैल गया और २९ अप्रैल को प्रखण्डदान हो गया। १८ अप्रैल को फैजाबाद जिले के माया-बाजार ब्लाक में श्री विचित्र भाई और जज साहब के निर्देशन में शिविर हुआ और २९ अप्रैल को इस जिले का पाँचवाँ प्रखण्डदान घोषित हुआ। इस प्रखण्डदान के १५२ गांवों में से १३९ गांवों का ग्रामदान हुआ है। फैजाबाद जिले में कुल ५४५ ग्रामदान हो गये हैं।

० आजमगढ़ सदर तहसील के ५ ब्लाकों में एकसाथ अभियान शुरू करने के लिए ९-१० मई को शिविर हुआ, जिसमें आचार्य राममूर्ति, श्री कपिल भाई और श्री रामजी भाई का योगदान प्राप्त हुआ।

० उत्तराखण्ड में गढ़वाल जिले के कोटद्वार, लैंसडाउन और सतपुली कस्बों में शराबबन्दी के लिए सर्वोदय-कार्यकर्ताओं ने पिकेटिंग की, जिसके फलस्वरूप श्री मानसिंह रावत, सोहनलाल भूमिक्षु, चण्डीप्रसाद भट्ट, राधा बहन के साथ कई अन्य कार्यकर्ता भाई-बहन गिरफ्तार कर लिये गये। बाद में सरकार ने उनको छोड़ दिया। श्री मानसिंह रावत ने सत्याग्रह किया और उनके तथा वहाँ की जनता की भावना के समर्थन में डा० सुशीला नायर ने आमरण उपवास किया। सरकार ने पिकेटिंग के व्यापक प्रभाव को देखकर उक्त तीनों शराब की दुकानों को बन्द कर देने की घोषणा की। अब सभी कार्यकर्ता पुनः ग्रामदान आन्दोलन में लग गये हैं। अलमोड़ा और पिथौरागढ़ में विशेष अभियान चलनेवाले हैं।

० ८ मई को २ बजे दिन में खादी-ग्रामोद्योग विकास परिषद, तेलियाबाग में वाराणसी जिले के ग्रामदान के काम में लगेसभी प्रमुख कार्यकर्ताओं की विचार-गोष्ठी पंडित श्री रामसूरत मिश्र की अध्यक्षता में हुई। यह निश्चय किया गया कि वाराणसी जिलादान की विधिवत् घोषणा मई में ही हो जानी चाहिए। इस निर्णय के सन्दर्भ में यह भी तय किया गया कि १२ मई से सभी अपूर्ण प्रखण्डों में अभियान प्रारम्भ करके अधूरे काम को पूरा किया जाय।

० मथुरा जनपद की छाता तहसील के नन्द गाँव और छाता विकास-खण्डों में ३ मई से १० मई १९६९ तक ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य अभियान चलाया गया।

५ मई से ९ मई १९६९ तक ५० कार्यकर्ताओं की २५ टोलियाँ नन्दगाँव और छाता विकास-खण्ड में १९ न्याय-पंचायत-क्षेत्र के कुल ९७ ग्रामों में से ८७ ग्रामों में पदयात्रा करके राष्ट्रपिता बापू एवम् सन्त विनोबाजी के ग्रामदान, ग्राम-स्वराज्य का सन्देश लोगों को सुनाया। फलस्वरूप ५१ ग्रामों के लोगों ने ग्रामदान घोषणा-पत्र पर अपनी सहमति दी और ग्रामदान-विचार को स्वीकार किया।

० गांधी शान्ति प्रतिष्ठान केन्द्र (गांधी-विचार-केन्द्र) कानपुर द्वारा १ अप्रैल १९६८ से ३१ मार्च '६९ तक के वर्ष में कुल रु० २१,६७४.१६ के सर्वोदय-साहित्य की बिक्री हुई। केन्द्र के कार्यकर्ताओं; विशेषकर श्री विजय भाई के प्रयास से व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा, खादी-प्रदर्शिनियों में साहित्य-स्टाल लगाकर तथा विशेष अभियान आदि आयोजनों के द्वारा साहित्य-बिक्री के प्रयास किये गये। स्थानीय शिक्षण-संस्थाओं और पुस्तकालयों में भी साहित्य पहुँचाने का प्रयत्न हुआ। केन्द्र की ओर से 'भूदान-यज्ञ' साप्ताहिक की १०० प्रतियाँ प्रति सप्ताह पाठकों को पहुँचायी जाती हैं। वर्ष में गांधी मार्ग के १६ स्थायी ग्राहक और 'भूदान-यज्ञ' के २६ स्थायी ग्राहक बनाये गये।

चम्पारण जिला सर्वोदय मंडल

० चम्पारण जिला सर्वोदय मंडल का चुनाव दि० १६-३-६९ को ३ बजे दिन में बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ, केन्द्र भण्डार, मोतिहारी में श्री नर्मदेश्वर झा शास्त्री के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। निम्नलिखित व्यक्ति सर्व-सम्मति से पदाधिकारी चुने गये।

श्री विक्रमा पाण्डे—अध्यक्ष
श्री अनन्त प्रसाद—उपाध्यक्ष
श्री शिव शंकर प्रसाद—मंत्री
श्री श्रीनारायण प्रसाद—सहमंत्री
श्री रामचन्द्र सिंह—प्रतिनिधि, स०से०सं०

नशाबन्दी

० मध्यप्रदेश नशाबन्दी समिति की ओर से जानकारी प्राप्त हुई है कि मध्यप्रदेश-शासन ने १६ मई से ग्राम पालिया की शराब की दुकान बन्द कर दी है। ज्ञात है कि इस गाँव की ओर से पिछले ३४ दिनों से शराब की दुकान बन्द कराने के लिए सत्याग्रह चल रहा था। राज्य के कृषि-मंत्री श्री भागवत साबू ने

www.vinoba.in

स्वयं पालिया पहुँचकर शासन के निर्णय की घोषणा की और शराब की दुकान बन्द करायी। राज्य के पंचायत-मंत्री श्री शिवभानु सिंह सोलंकी ने पालिया में कहा कि जिस गाँव में कोई भी शराब नहीं पीयेगा उस गाँव की जनता को शासन ५००रु० पुरस्कार देगा।

साहित्य-बिक्री

• सर्वोदय-साहित्य भण्डार, इन्दौर ने मई '६८ से अप्रैल '६९ तक १,५६,८४७ रुपये का तथा रेलवे-स्टाल से ६,१७१ रुपये का साहित्य बेचा है।

श्रद्धांजलि

झाँसी जिले के एक बहुत ही त्यागी तपस्वी कर्मठ, वयोवृद्ध गांधीवादी विचारक श्री पं० रामसहायजी शर्मा का दिनांक १२ मई की रात्रि को झाँसी के सिविल अस्पताल में अपनी ६४ वर्ष की आयु में निधन हो गया। स्वतंत्रता-संग्राम में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड आपका क्षेत्र रहा और आप ७ वर्ष जेल में रहे थे। आजादी के बाद आप गांधीजी के विचारों का प्रचार करते हुए वर्षों गाँव-गाँव पैदल घूमे। गुरसराय का श्रीखेर इण्टर कालेज, बसवासागर का पुस्तकालय एवं हाईस्कूल, व लक्ष्मी व्यायाम मन्दिर आपकी रचनात्मक प्रवृत्तियों के जीते-जागते स्तम्भ हैं।

आपने जीवन के अन्तिम क्षण बहुत ही निश्चिन्तता में बिताये। झाँसी जिला परिषद के अध्यक्ष श्री डा० गोविन्द दासजी आपके निकट थे, जिनसे आप कह रहे थे, "जीवन में अबतक रोज सोता रहा पर जब जागा तो काम का बोझ सामने रहा। गोविन्द दास, अब ऐसी चिर निद्रा आ रही है, फिर कोई काम का बोझ नहीं रहेगा। मैं उस निद्रा के लिए बिलकुल हृदय से प्रसन्नतापूर्वक तैयार हूँ। आप सब गांधीजी-विनोबाजी का काम करते-करते ऐसी ही चिर निद्रा की आकांक्षा रखें।" और वे चले गये।...

—लोकेन्द्र

ग्रामदान-प्रखण्डदान-जिलादान

भारत में (५ मई '६९ तक) **बिहार में**

प्रांत	प्रखण्डदान	ग्रामदान	जिलादान	जिला	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान
बिहार	४०,६१८	३८७	६	दरभंगा	३,७२०	४४	१
उत्तरप्रदेश	१५,१६४	८६	२	मुजफ्फरपुर	३,६१७	४०	१
तमिलनाडु	१२,३८५	१२४	३	पूर्णिया	८,१५७	३८	१
उड़ीसा	६,३४८	४०	—	सारण	३,७७१	४०	१
मध्यप्रदेश	५,०६६	२५	२	चम्पारण	२,८६०	३६	१
आन्ध्र	४,११६	१२	—	गया	५,८४५	४६	१
सं० पंजाब (पंजाब, हरि०, हिमा०)	३,६६४	७	—	सहरसा	२,७५१	२३	१
महाराष्ट्र	३,५५६	१४	—	मुंगेर	३,०४४	३७	१
असम	१,५७०	१	—	धनबाद	१,२८४	१०	१
राजस्थान	१,२७०	१	—	पलामू	८०४	१६	—
गुजरात	६२०	३	—	हजारीबाग	१,२८७	५	—
प० बंगाल	७४८	—	—	भागलपुर	५७८	१४	—
कर्नाटक	६६२	—	—	सिंहभूम	१,२६३	५	—
केरल	४१८	—	—	संथाल परगना	१,१६४	१२	—
दिल्ली	७४	—	—	शाहाबाद	१७१	५	—
जम्मू-कश्मीर	१	—	—	पटना	४८	१३	—
				रांची	४४	—	—
कुल :	१,००,०८६	७००	१६	कुल :	४०,६१८	३८७	६

संकल्पित प्रदेशदान ७ : (१) बिहार, (२) तमिलनाडु, (३) उड़ीसा, (४) उत्तर प्रदेश, (५) मध्यप्रदेश, (६) महाराष्ट्र, (७) राजस्थान।

कानूनी घोषित ग्रामदान :—
१. उड़ीसा ८७०
२. असम १६७ (ग्रामसभाएँ स्थापित १३२)
३. राजस्थान १४५ (ग्रामसभाएँ स्थापित १४१)
४. बिहार १२४
५, तमिलनाडु ५९ (राजपत्रित १३)
६. महाराष्ट्र १
७. आन्ध्र १

एक स्पष्टीकरण : बिहार तथा अन्य कई प्रदेशों से प्रखण्डदान पूरे होने के समाचार मिलते ही उन्हें प्रखण्डदान की संख्या में जोड़ दिया जाता है, लेकिन उतनी जल्दी ग्रामदानी गाँवों की संख्या नहीं मिल पाती, इसलिए कहीं-कहीं के आँकड़ों में प्रखण्डदानों की संख्या के अनुपात में ग्रामदानों की संख्या कम होती है।

विनोबा-निवास, गिरीडीह —कृष्णराज मेहता
दिनांक : ५-५-६९

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।